चेसलडन प्रयोग। डाकृर चेसलडन ने, १७२७ ई० में, एक १३।१४ वर्ष के जन्मान्ध की आंख सुधारी। आंखें से दूरता जानना तो दूर रहा, उसे सब पदार्थ आंखें से वैसे ही छूते हुए मालूम हुए जैसे छुए हुए पदार्थ त्वक् पर मालूम होते हैं। उसे मुलायम पदार्थ अच्छे मालूम देते थे; किन्तु वह देखकर पदार्थों में भेद नहीं जान सकता था। अतएव कई पदार्थ रोज़ सोखकर भो वह भूल जाता था। पदार्थों के देखकर फिर पहचानने के लिए उन्हें छूकर अपने मनमें वह उनका ज्ञान उत्पन्न करता था। कुत्ते बिल्ली का भेद वह बार बार भूल जाता था। अतएव बिल्ली के पकड़ने के बाद स्पर्श द्वारा पहचान कर, उसे बहुत देर देखता रहता और फिर बोलता "अच्छा, पुस, अब मैं तुम्हें पहचान गया"। चित्रों में उसके पदार्थों का ज्ञान न होता था; चित्र उसे केवल रङ्ग विरङ्गे समधरातल प्रतीत होते थे। प्रायः दे महोने बाद उसे ज्ञान हुआ कि वह स्थूल पदार्थों के चित्र हैं! पहले उसे वहम हुआ कि अंशों के ऊंचे नीचे दिखाई देने से चित्रों में भी उँचाई निचाई होगी, किन्तु जब उसने छूकर देखा कि वे अंश जो प्रकाश और छाया (Light and shade) के कारण गोल मालूम देते हैं, स्पर्श में चिपटे हो हैं, तब बहुत दिनों तक वह पूछता रहा कि "कैानसा इन्द्रिय झूंठा है, आंख वा त्वक् ?"

फ्रान्ज़ प्रयोग। १८४१ ई० में लीपज़िक् के डाकृर फ्रान्ज़ ने एक १७ वर्ष के जन्मान्ध को आंख ठीक की। उसके सामने एक काग़ज़ के टुकड़े पर "वर्ग" के बीचमें "वृत्त" का चित्र बनाकर रक्खा गया। उसने दोनों पहचान लिए। फिर एक मोटा चैाकोर लकड़ी का टुकड़ा और उस पर वैसाही गोला रख कर परीक्षा ली गई तो उसने उन्हें समधरातल पर बने "वर्ग" और "वृत्त" पहचाना। अर्थात् उसे मोटाई का कुछ भी ज्ञान न हुआ। घन टुकड़े के स्थान पर काग़ज़ रखने से भी उसे वही भाव हुआ। एक शङ्कु के उसने "त्रिकोण" कहा। पूछने पर मालूम हुआ कि वह पहले तो उन पदार्थों के पहचान नहीं सकता था; किन्तु उसकी उँगलियों पर उन पदार्थों के छूने का सा ज्ञान हुआ; अतएव वह उन्हें जान सका। हाथ से छूकर वह उन तीनों चीज़ों के (घन, गोल, शङ्कु के) पहचान गया। पहले पहल वह झिझकता था कि कहीं पदार्थ (जो उससे दूर थे) उससे टकरा न जायँ। स्पर्श से यह जान कर भी कि नाक ऊंची है, और आंखें नीची, वह मनुष्यों के चेहरों के सपाट ही देखता था। इससे सिद्ध हुआ कि नेत्र ऊपर का आकार तो जान सकते हैं, किन्तु मोटाई नहीं; और जिस प्रकार दे भाषाओं के पढ़नेवाले बिना एक का दूसरी में अनुवाद किए आगे नहीं बढ़ सकते, वैसे ही त्वक्-प्रत्यक्ष और चाक्षुष-प्रत्यक्ष का हमें मिलान करना पड़ता है। वह बालक, आंख ठीक होने पर भी, बिना बात सुने, आनेवालें के नहीं पहचान सकता था। तब तक उसे स्वप्न में माता पिता आदि का स्पर्श और शब्द ही मालूम पड़ता था, किन्तु अब रूप भी जान पड़ने लगा।

ट्रिक्षिनेटी प्रयोग। डा० ट्रिक्षिनेटी ने एक ११ और १० वर्ष के भाई और बहन की आँखें बनाईं। सामने नारङ्गी रखने पर, और उसे लेने के कहे जाने पर, भाई ने आँख पर हाथ मारा, और खाली मुट्ठी बन्द करने से लज्जित हो, क्रमशः हाथ मारते मारते, उसमे नारङ्गी पाई। बहन ने एक बेर तो आँख पर ही विफल मुट्ठी बन्द की, किन्तु फिर आँख की सरल रेखा में तर्जनी उँगुली चलाकर उसने नारङ्गी उठाने का उद्योग किया।

सो, दूरत्वज्ञान आँख का गुण नहीं है; तो भी हम आँख से दूरी जानना सीख सकते हैं; क्योंकि यद्यपि हमें अपने से दूरी नहीं सूझती, तथापि दोनों छोरों के बीच में दूरीवाले पदार्थ देखने से हमें बड़ी सहायता मिलती है। इसके सिवा इन बातों से भी हमें आँख से विप्रकर्ष के ज्ञान में सहायता मिलती है।

(१) समोप के पदार्थों के देखने में आँख का डेला ज़रा संकुचित होता है, और ताल कुछ उन्नतोदर हो जाता है। यह क्रिया बदले की होने पर

भी ऐच्छिक ग्रैार सचेतन है। ग्रतएव, ग्राँख पर कुछ दबाव होने से हम जान लेते हैं कि दृश्य पदार्थ पास ही है।

(२) दूरके पदार्थों से ग्रानेवाले प्रकाश के किरण समानान्तर ही होते हैं; इसी लिए उन्हें लेते समय नेत्र यथावस्थित रहता है। पास के पदार्थों के किरण विसर्पी होते हैं इसी लिए उन्हें लेने में हुग्रा ग्रायास, ग्राँख की गेंद के द्वारा नहीं, किन्तु स्नायु-सम्बन्धी छल्ले के द्वारा मन का पहुंचाया जाता है।

(३) जब पदार्थ दूर होते हैं तब एक ग्राँख से, या दोनों ग्राँखों से देखने से रेटिना पर बने चित्रमें कुछ ग्रन्तर नहीं होता। पास होने पर भेद ग्रवश्य होता है। किसी पुस्तक को बन्द करके उसकी पीठ को, पहले एक ग्राँख ग्रैार फिर दोनों ग्राँखों से, २० फीट ग्रैार एक फुट की दूरी पर रख-कर इस भेद को जान सकते हैं।

(४) पदार्थों के समीप या दूर होने से रेटिना पर बने हुए चित्रों में ग्रपेक्षाकृत भेद होता है। ग्राँख के पास रक्खे हुए एक पैसे से सूर्य भी ढक सकता है; परन्तु दूर होने पर पैसा रेटिना का बहुत थोड़ा स्थान रोक सकता है।

(५) पदार्थों के दूर होने से उनसे ग्रानेवाली किरणें धुँधला, ग्रैार समीप होने से साफ़, चित्र बनाती हैं। ग्रतएव हम ग्रनुमान करते हैं कि धुँधले चित्रवाला पदार्थ दूर ग्रैार साफ़ चित्रवाला पदार्थ समीप होगा।

(६) पदार्थों की दूरता के ज्ञान में हमें उन पदार्थों से भी ज्ञान मिलता है जो हमारी ग्राँख ग्रैार उन पदार्थों के बीच में हैं, ग्रैार जिन पर ग्राँख टिकती है। बीच में ज़्यादा पदार्थ होने से दृश्य पदार्थ दूर, ग्रैार कम होने से समीप, जाना जाता है। इससे दूरता का ग्रन्दाज बहुत जल्दी होता है; किन्तु बहुधा भूल भी हो जाती है।

[ग्रसमाप्त।

मनोरञ्जक श्लोक।

भ्रातः कस्त्वं, तमाखुर्गमनमिह कुतो, वारिधेः पूर्वपारात्
कस्य त्वं दण्डधारी, नहि तव विदितं श्रीकलेरेव राज्ञः।
चातुर्वर्ण्यं विधात्रा विविधविरचितं लोककल्याणहेतो—
रेकीकर्तुं बलात्तन्निखिलजगति रे शासनादागतोऽस्मि॥

प्रश्न—भाई, ग्राप कैान हैं?

उत्तर—मैं तम्बाकू हूं।

प्र०—ग्रापका कहां से ग्रागमन हुग्रा?

उ०—समुद्र-पार से।

प्र०—ग्रापको किसने भेजा है—ग्राप किसके दण्ड-धारी हैं?

उ०—क्या ग्रापको मालूम नहीं कि मैं राजा कलि का दूत हूं।

प्र०—ग्राप किस लिए पधारे हैं?

उ०—संसार के कल्याण के निमित्त ब्रह्मा ने जो वर्णाश्रम धर्म्म की उत्पत्ति की है, उसको गड्ड बड्ड करके ज़बरदस्ती एक करने के लिए मुझे हुकम हुग्रा है। इसीलिए मैं ग्राया हूं। ग्रापकी समझ में ग्राया!

❋

जातेति कन्या महती हि चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान्वितर्कः।
दत्ता सुखं यास्यति वा नवेति कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥

कन्या का होना ही एक बहुत बड़ी चिन्ता का कारण है; फिर, किसके साथ उसका विवाह करना चाहिए? यह ग्रैार भी ज़ियादा फ़िकर की बात है; ख़ैर किसी तरह विवाह हो गया तो यह शंका लगी रहती है कि ससुराल में वह सुख से रहेगी या नहीं। क्या कहें, कन्या का पिता होना ही बड़े कष्ट की बात है।

पाण्डेय लोचनप्रसाद।



प्रयाग-प्रवासी प्रिंस जेनेरल पद्मजंग राना बहादुर।



स्वर्गवासी प्रिंस जगतजंग बहादुर राना, कमांडिंग जेनेरल, पश्चिम प्रान्त, नेपाल। सर जंगबहादुर के बड़े बेटे।



बाग की राजकुमारी
[महाराजा जंगबहादुर की एक कन्या]

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] जुलाई, १९०५ [संख्या ७

विविध विषय।

जापान में पहला समाचार पत्र १८६३ ईसवी में निकला इस बात के सिर्फ़ ४२ वर्ष हुए। परन्तु इस समय वहां दैनिक और सामयिक पत्रों की संख्या १,५०० है!

***

ग्रीस की राजधानी एथन्स से एक साप्ताहिक पत्र पद्य में निकलता है। उसमें गद्य का नाम तक नहीं रहता। विज्ञापन तक पद्य में निकलते हैं। दुनिया में, इस समय, और किसी पत्र में यह विचित्रता नहीं है।

***

स्विज़रलैण्ड के एक कारीगर ने एक ऐसी कल बनाई है जो छोटे छोटे बच्चों का रोना बन्द कर देती है। वह कल बच्चों के झूले में लगा दी जाती है। जब बच्चा रोता है तब उसकी आवाज़ से हवा में लहरें उठने लगती हैं। वे लहरें उस कल में लगे हुए फ़ोनोग्राफ़ (गानेवाला बाजा) को चला देती हैं और वह गीत गाने लगता है। इसके साथ ही उस कल में लगे हुए घड़ी के से चक्कर चल उठते हैं और झूले को हिलाने लगते हैं। गीत सुनने और झूले के हिलने से बच्चा चुप हो जाता है। उसके चुप होते ही हवा की चञ्चलता जाती रहती है और गाना और झूले का हिलना दोनों बन्द हो जाते हैं।

***

कुछ दिनों से यलेक्ट्रोफ़ोन नामक एक यन्त्र काम में लाया जाने लगा है। टेलीफ़ोन की तरह यह भी एक शब्दवाहक यन्त्र है; पर इसमें बिजुली की शक्ति से बहुत अधिक सहायता ली जाती है। यह जहां रख दिया जाता है वहां की बातचीत को सैकड़ों कोस दूर से आदमी सुन सकता है। एक दफ़ा इङ्गलैण्ड के प्रधान-मन्त्री बालफ़र साहब ने शेफ़ील्ड में एक वक्तृता दी। लण्डन से शेफ़ील्ड २०० मील है। वक्ता के सामने थोड़ी थोड़ी दूर पर चार यलेक्ट्रोफ़ोन यन्त्र रख दिये गये। वे यन्त्र उन तारों से जोड़ दिये गये जो लण्डन से ग्लासगो को गये हैं। इधर शेफ़ील्ड में बालफ़र साहब बोलने

लगे उधर लण्डन में अख़बारों के रिपोर्टर उसी तरह के यन्त्रों के सामने बैठकर उनकी वक्तृता सुनने लगे। जो कुछ साहब ने अपनी वक्तृता में कहा उसका एक एक शब्द साफ़ साफ़ लण्डन में सुन पड़ा और कुछ ही देर बाद वह सारी वक्तृता अख़बारों में छप गई। इन यन्त्रों के मुंह से इस वक्तृता को सुनकर रिपोर्टरों ने कहा कि यदि वे पारलियामेण्ट में बालफ़र साहब के पास बैठकर उसे सुनते तो भी उसे वे उतना साफ़ न सुन सकते जितना साफ़ उन्होंने इन यन्त्रों के सामने बैठकर सुना। विज्ञान चाहै जो करै!

***

जान पड़ता है जिस चीज़ का भोग देवता लगाते हैं उसका पता लग गया। डाकृर क्लेमण्ट और डाकृर हुकार्ड ने एक ऐसी चीज़ ढूंढ निकाली है जो बेहद बलवर्द्धक है। उसका नाम है फ़ारमिक एसिड। यह एक प्रवाही पदार्थ है। इसमें कोई रङ्ग नहीं होता। यह चींटी और तितली की तरह के कीड़ों के बदन से निकलता है। इसकी गन्ध बहुत तेज़ और ज़ायक़ा बहुत ख़राब है। परन्तु शक्ति के बढ़ाने में तो यह ओषधि अपना सानी नहीं रखती। एक कमज़ोर आदमी को यह दवा खिलाई गई। उसका यह फल हुआ कि पहले वह जितना बोझ उठा सकता था उसका पँचगुना उसने उठा लिया। डाकृर हुकार्ड की परीक्षा का फल भी आश्चर्य्य-दायक हुआ। दो दिन उन्होंने इस दवा को खाया। इससे उनका बल दूना हो गया। पाँच दिन में वह पँचगुना हो गया! इतनी बलवृद्धि के लिए उन्हें सिर्फ़ पाँच ग्राम दवा खानी पड़ी, अर्थात् हररोज़ एक एक ग्राम। इस दवा का पता लग गया सो तो अच्छा ही हुआ। पर इस देश के अनेक वैद्य-राजों के रोज़गार के मारे जाने का डर है। फ़ारमिक एसिड सुलभ हो जाने से इन लोगों के रस, अवलेह, अरिष्ट और बटी आदि ले कर शेर से लड़ने या हाथी के दांत उखाड़ने को फिर कौन परवा करैगा?

पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र।

सुखदेव मिश्र का जीवनचरित, सरस्वती में, पढ़ कर हमारे कई मित्रों ने हम से कहा, कि हम अपनी तरफ़ से और दो एक पुण्यशील पुरुषों का चरित प्रकाशित करें। उनकी इच्छा को पूरा करने के लिए, आज, हम अपने पड़ोसी पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र का चरित थोड़े में सुनाते हैं। मिश्र जी ३२ वर्ष तक बनारस के क्वीन्स कालेज में मास्टर रहे। इस प्रान्त के लिखे पढ़े आदमियों में शायद ही कोई ऐसे हों जो उनको न जानते हों। हमारे पास पड़ोस में तो, दूर दूर तक के देहाती आदमी तक, "मथुरा मास्टर" को जानते हैं।

चित्र देखने से चरित की योग्यता बढ़ जाती है; उसमें कुछ और ही शोभा आ जाती है; उसे पढ़ने से कुछ और ही आनन्द मिलता है। परन्तु, खेद है, हमको मिश्र जी का चित्र नहीं मिल सका। बहुत प्रयत्न करने पर भी हमको कामयाबी नहीं हुई। सुनते हैं, उन्होंने अपना चित्र तैयार ही नहीं कराया। यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। जो सादेपन का अवतार था; अङ्गरेजी के प्रकाण्ड पण्डित होने पर भी जिसे अङ्गरेज़ी सभ्यता छू तक नहीं गई थी; अपने पूर्वजों की चालढाल पर हिमालय के समान अचल रहने ही में जिसे गर्व था; वह अपने चित्र के लिए क्यों किसी फ़ोटोग्राफ़र को ढूंढ़ने का परिश्रम उठाता?

चित्र न मिला, न सही। पाठक, आप हमारे साथ, बनारस कालेज के हेड मास्टर के कमरे में एक मिनिट के लिए चलिए और वहां एक व्यञ्च पर बैठ कर ध्यानस्थ हो जाइए। भावना कीजिए कि दस बजने में कोई आध घण्टा बाक़ी है। इसी समय एक पालकी आती हुई देख पड़ी और वह कालेज के बरामदे में रख दी गई। पालकी दोनों तरफ़ से बन्द है। उसके एक तरफ़ का दरवाज़ा

खुला। उससे एक पुरुष बाहर आया। उसके सिर में बिलकुल पुरानी चाल की पगड़ी है; बदन में बिलकुल पुरानी चाल का बालाबर अंगा है; उस पर एक काला चोगा है; कन्धे पर चोगे के ऊपर घड़ी किया हुआ, बिलकुल पुरानी चाल का, सफ़ेद डुपट्टा रक्खा है। मारकीन की धोती लम्बी लटक रही है। सिर और डाढ़ी के बाल मुंड़े हुए हैं। मूंछें बड़ी बड़ी हैं। आेंठ कुछ मोटे हैं। नाक और आँखें बड़ी हैं। शरीरलता लम्बी, पर मोटी नहीं है। रंग सांवला है। ललाट पर सफ़ेद चन्दन की दो टिकलियां लगी हुई हैं। इस वेश और इस आकृति की वह मूर्ति कमरे के भीतर आई और अपनी कुरसी पर बैठ गई। अब तक, बिलकुल पुरानी चाल के उसके देशी जूते, पालकी ही में थे। उन्हें एक चपरासी, या दफ्तरी, उठा लाया और मेज़ के नीचे उसने रख दिया। आप यह न समझिए कि पालकी से कमरे तक इस माननीय मूर्ति को नंगे पैरें चलना पड़ा। नहीं; पैरें में मोज़े हैं। बस, आपने, अंगरेज़ी-सभ्यता के साथ इतनी ही रिआयत की है। परन्तु कहां? पैरें में! पाठक, भावना के बल से यदि आपने इस शब्दचित्र को समझ लिया है ते। आप पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र के चित्र को देख चुके।

पण्डित जी, कान्यकुब्ज ब्राह्मण, हिमकर के मिश्र थे। जिस वंश को हमारे सुखदेवजी ने अपने जन्म से पवित्र किया, उसी वंश की शोभा मथुराप्रसादजी ने भी बढ़ाई। कानपुर के पास काकूपुर एक गाँव है। मिश्रजी के पूर्वज वहीं रहते थे। उनके पिता ने काकूपुर छोड़ दिया; और उनाव के ज़िले में, भगवन्तनगर के पास, हमीरपुर में वे जाकर रहने लगे। वे बहुत दिनों तक वहां रहे। हमीरपुर से गङ्गातट कोई छ सात मील था। उनाव ही के ज़िले में एक गाँव बकसर है। वह गङ्गा के बिलकुल किनारे है। वहाँ चण्डिका देवी का एक बहुत पुराना मन्दिर है। मिश्रजी के एक सम्बन्धी वहां रहते थे। अतएव उनकी सलाह से, १८७० ईसवी में, मिश्रजी ने हमीरपुर छोड़ा और बकसर में घर बनवाया। मिश्रजी के पिता ने अपने पिता का गांव छोड़ा। क्या इसीसे पण्डितजी ने भी अपने पिता का गांव छोड़ दिया? जब से मिश्रजी बकसर आये तब से वे हमारे पड़ोसी हुए। हमारे जन्मग्राम से यह ग्राम केवल दो मील है। पण्डित मथुराप्रसाद के पितामह का नाम वैद्यनाथ था। उनका विवाह उनाव के ज़िले में सुमेरुपुर नामक गांव में हुआ था। यह गांव भगवन्तनगर और हमीरपुर से थोड़ी ही दूर है। इसी योग से मिश्रजी के पिता, पण्डित सेवकराम, कानपुर का ज़िला छोड़कर, उनाव के ज़िले में आये। वहां, हमीरपुर में, २० जुलाई, १८२६ ईसवी को पण्डित मथुराप्रसाद का जन्म हुआ।

पण्डित मथुराप्रसाद के पिता बनारस में नैाकर थे। बनारस कालेज के अध्यक्ष ग्रिफ़िथ साहब के समय के पुराने चपरासियों का कथन है कि पण्डित जी के पिता बनारस में किसी बहुत छोटे काम पर थे। परन्तु एक और मार्ग से जो बातें हमको मालूम हुई हैं उनसे जान पड़ता है कि वे किसी बङ्गाली राजा के यहां कारिन्दा थे। शायद पीछे से वे कारिन्दा हुए हों। कुछ भी हो, यह सिद्ध है, कि वे बहुत अच्छी दशा में न थे।

पण्डितजी की उमर पाँच वर्ष की थी जब वे अपने पिता के पास बनारस आये। वहां आने के दो ही वर्ष बाद उनके बड़े भाई का शरीरपात हुआ और उनकी माता भी परलोक पधारीं। इतनी छोटी, अर्थात् सात वर्ष की उमर में, मातृहीन होना बड़ी दुःसह विपत्ति है। पर, ऐसी दुर्व्यवस्था होने पर भी, अपने पिता की प्रेरणा से, मिश्रजी ने विद्याभ्यास आरम्भ किया। कुछ समय के अनन्तर उन्होंने गवर्नमेण्ट कालेज में प्रवेश किया। यद्यपि इनको कई तरह के सुभीते न थे, तथापि इन्होंने सब बाधाओं को तुच्छ समझ कर, अध्ययन में चित्त लगाया। सुनते हैं, ये सदैव अपने दरजे में सब से ऊंचे रहते थे; और जितनी परीक्षायें होती थीं, सब में, इनको पारितोषिक मिलता था।

उस समय यूनीवर्सिटी की स्थापना नहीं हुई थी; एम० ए०, बी० ए० का कहीं नाम न था; यंट्रंस, अर्थात् प्रवेशिका, परीक्षा तक जारी नहीं हुई थी। कालेज में केवल दो विभाग थे—एक जूनियर, दूसरा सीनियर। १८४६ ईसवी में पण्डित मथुराप्रसाद सीनियर क्लास में पहुंच गये; उसमें उनका आसन सब विद्यार्थियों के ऊपर हुआ। बनारस कालेज के भूत-पूर्व अध्यक्ष डाक्टर बालण्टाइन ने अपनी दी हुई सरटीफ़िकट में ऐसा ही लिखा है। मिश्रजी ने अपनी तीव्र बुद्धि, विद्याभिरुचि और योग्यता से अपने अध्यापकों को सदा प्रसन्न रक्खा।

पण्डितजी ने १८४६ ई०, अर्थात् २० वर्ष की उमर में, विद्याध्ययन समाप्त किया। समाप्त उन्होंने क्या किया; उन्हें करना ही पड़ा। उससे आगे अध्ययन का प्रबन्ध ही न था। यदि पण्डित जी ने सात वर्ष की उमर में पढ़ना आरम्भ किया तो १३ वर्ष में उसकी समाप्ति हुई। इससे यह अनुमान होता है, कि पहले, यदि हिन्दी और संस्कृत पढ़ने में, उनको ६ वर्ष लगे तो ७ वर्ष तक उन्होंने अंगरेज़ी पढ़ी। उस समय इतना पढ़ना बहुत काफ़ी था। और इस बात को अपनी विद्वत्ता से पण्डितजी ने अच्छी तरह सिद्ध भी कर दिखाया।

कालेज की शिक्षा समाप्त होने पर पण्डितजी को गवर्नमेण्ट ने यञ्जिनियरी का काम सीखने के लिए ग़ाज़ीपुर भेजा। वहां एक यञ्जिनियर के पास रह कर उन्होंने वह काम सीखा। वहां से लौट आने पर उन्होंने क़ानून का अभ्यास आरम्भ किया। इसी बीच में बनारस कालेज में थर्ड (तीसरे) मास्टर की जगह ख़ाली हुई। कालेज की कमिटी पण्डित जी की योग्यता को अच्छी तरह जानती थी। इस लिए, इसने उनको, ७५ रुपये महीने पर, परीक्षा के तौर पर, थर्ड मास्टर नियत किया। १८४७ ईसवी के एप्रिल में इस जगह पर उनकी नियुक्ति हुई। इससे स्पष्ट है कि यञ्जिनियरी, और क़ानून का अभ्यास उन्होंने केवल वर्ष ही डेढ़ वर्ष किया। थर्ड मास्टरी पर उनकी परीक्षा बहुत दिनों तक होती रही। दिनों नहीं, बरसों तक कहना चाहिए। सात वर्ष के बाद गवर्नमेण्ट ने उनको इस पद पर दृढ़ रूप से नियुक्त किया। ३१ मई १८५४ ईसवी को वे पूरे थर्ड मास्टर हुए और उन का वेतन ७५ से १५० रुपये हो गया।

थर्ड मास्टरी पर काम करते मिश्र जी को तीन वर्ष भी न होने पाये थे, कि १८५७ ईसवी के आरम्भ में, इस प्रान्त के भूतपूर्व लफ्टिनेण्ट गवर्नर, माननीय कालविन साहब के मन में, बनारस कालेज के अध्यापकों की परीक्षा लेने की धुन समाई। सुनते हैं, यह बात मिश्र जी को बहुत नागवार हुई। यहां तक कि लफ्टिनेण्ट गवर्नर के सेक्रेटरी को उन्होंने ने दो चार कड़ी कड़ी बातें भी सुनाईं। परन्तु परीक्षा किसी तरह टली नहीं। देनी पड़ी। उनको कालविन साहब के डेरे पर जाना पड़ा। वहां साहब ने जो कुछ उनसे पूछा उसका उन्होंने ऐसा अच्छा उत्तर दिया कि साहब उन पर बहुत ही प्रसन्न हुए। इस प्रसन्नता के उपलक्ष्य में उन्होंने मिश्र जी को उनका नाम खुदवा कर एक घड़ी पुरस्कार में दी। यही नहीं, किन्तु १८ जनवरी, १८५७ से, मिश्र जी को साहब ने सेकण्ड (दूसरा) मास्टर करके उनका वेतन १५० से २०० कर दिया। दैवयोग से उस समय यह जगह ख़ाली थी।

पण्डित मथुराप्रसाद जी ११ वर्ष तक सेकण्ड मास्टर रहे। १८६८ ईसवी के मे महीने में हेड मास्टरी ख़ाली हुई। उस समय डाइरेक्टर साहब की तजवीज़ यह हुई कि बरेली के स्कूल से एक मास्टर कीन्स कालेज में लाये जाँय और उन्हीं को हेड मास्टरी मिलै। परन्तु, उस समय, ग्रिफ़िथ साहब कालेज के प्रधान अध्यापक थे। पण्डित जी पर उनकी बेहद कृपा थी। उन्होंने प्रयाग के छोटे लाट, सर विलियम म्योर, से पण्डित जी की सिफ़ारिश करके उन्हीं को हेड मास्टरी दिला दी। इस पद के पण्डित जी सर्वथा योग्य थे; और ग्रिफ़िथ साहब और गवर्नमेण्ट ने जो कुछ किया

सर्वथा न्याय्य किया। तब से पण्डित जी का मासिक वेतन ४०० रुपये हो गया।

पण्डित जी ने दस वर्ष तक बड़ी ही योग्यता से हेड मास्टरी की। जब उनको नौकरी करते ३२ वर्ष हो चुके, तब, अर्थात् १८७८ ईसवी में, उन्होंने २०० रुपये मासिक पर पेनशन ले ली। तब से उनका समय विशेष करके भजन-पूजन में ही व्यतीत होने लगा।

मिश्र जी समय के बड़े पाबन्द थे। सदैव ठीक समय पर कालेज जाते थे। समय पर क्या, उसके पहलेही वे पहुँच जाते थे। एक मिनिट की देरी नहीं होती थी। उनके समय में, लड़के क्या मास्टर तक, सब समय पर आते और अपना अपना काम करते थे। जो लड़के देर से आते थे उनपर उनकी बड़ी तीव्र दृष्टि रहती थी। पण्डित जी के आधीन जो मास्टर थे वे तक उनसे डरते थे। स्कूल में उनका आतङ्क सा जमा था। कोई लड़का या मास्टर सिर खोल कर क्लास में न बैठने पाता था। उनके समय में जानदास नामक एक किरानी मास्टर थे। उनको पण्डित जी ने साफ़ा बांधने के लिए मजबूर किया। जानदास ने ग्रिफ़िथ साहब से शिकायत की। साहब ने मिश्र जी के पक्ष में फ़ैसला किया। उन्होंने जान से कहा कि तुम्हारा धर्म्म क्रिश्चियन है; परन्तु तुम्हारा देश हिन्दुस्तान है। इस लिये तुमको हिन्दुस्तानी पहनाव पहनना चाहिये।

पण्डित जी के अनेक छात्र इस समय बड़े बड़े पदों पर हैं। परलोकवासी सैयद महमूद ने बहुत दिनों तक उनसे पढ़ा था। उनके विद्यार्थियों में से हमारे एक मित्र पण्डित युगुलकिशोर बाजपेयी हैं। वे इस समय चरखारी राज्य में एक अच्छे ओहदे पर हैं। उनका कथन है कि जहां तक वे जानते हैं, मिश्र जी ने कालेज से कभी छुट्टी नहीं ली; कभी वे बीमार नहीं हुए; और कभी वे देरी से नहीं आये। उनको याद में एक बार मिश्र जी को कालेज में जूड़ी आ गई। इससे जब अपनी चौकी पर उनसे किसी तरह न बैठे रहा गया तब वे बाहर बरामदे में चले गये। वहां अपनी पालकी के भीतर वे सिकुड़ कर बैठ गये। इधर लड़के यह जान कर खुश हुए कि आज इनसे पिण्ड छुटा। परन्तु केवल १५ मिनिट हुए थे कि मिश्र जी फिर अपनी कुरसी पर आकर डट गये।

सुनते हैं पण्डित जी के मिज़ाज में सख़्ती बहुत थी। इसीसे कालेज से सम्बन्ध रखनेवाले लोग उनको ज़रा कम पसन्द करते थे। पहले पण्डित जी, घर से कालेज तक, अपनी पालकी के दरवाज़े खोल कर आते थे। परन्तु पीछे से पालकी के दरवाज़े बन्द करके वे कालेज जाने लगे। यह परिवर्तन शायद उनकी किसी सख़्ती ही के परिणाम का सूचक हो।

पण्डित जी क़ायदे के भी सख़्त पाबन्द थे। इसी से वे चाहते थे कि और लोग भी उन्हीं का अनुकरण करें। परन्तु सब लोग "मथुराप्रसाद" न थे। उनसे सख़्ती न होती थी। वे थोड़ी थोड़ी बात के लिये लड़कों की रिपोर्ट न करते थे। यह बात मिश्र जी को पसन्द न थी। पण्डित दीनदयालु तिवारी, इस समय, इस प्रान्त में, मदरसों के असिस्टण्ट इन्सपेक्टर हैं। मिश्र जी के समय में वे उनके आधीन क्वीन्स कालेज में मास्टर थे। उनके किसी काम से अप्रसन्न होकर मिश्र जी ने प्रधान अध्यापक से उन पर दण्ड कराया। परन्तु पण्डित दीनदयालु जी ने साहब से मिल कर वह दण्ड माफ़ करा लिया। इस पर मिश्र जी बहुत नाराज़ हुए। और इस घटना को वे जन्म भर नहीं भूले। उनकी मृत्यु के कुछ ही समय पहले, एक दिन, असिस्टण्ट इन्सपेक्टरी की दशा में, पण्डित दीनदयालु जीने मिश्र जी से अपने उस अपराध की क्षमा मांग कर उनको सन्तुष्ट किया। इससे जान पड़ता है कि मिश्र जी कुछ क्रोधी भी थे।

पण्डित युगुलकिशोर बाजपेयी चरखारी जाने के पहले एक बार पण्डित मथुराप्रसाद के पास गये और उनसे उन्होंने कुछ उपदेश चाहा। आपने

बहुत सूक्ष्म उपदेश दिया। आपने अंगरेज़ी के तीन शब्द कहे—"Satisfy your conscience" अर्थात् अन्तःकरण को सन्तुष्ट रक्खो। मतलब यह कि जिस काम के करने को तुम्हारा दिल गवाही दे उसी को करो। जिसे करने को दिल न गवाही दे उसे कभी मत करो। उपदेश बहुत अच्छा दिया।

पण्डित जी की अङ्गरेज़ी-विद्वत्ता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। वे बड़े ही अध्ययनशील थे। इसीसे ग्रिफ़िथ साहब उन पर सबसे अधिक प्रसन्न थे। वे ऐसी अच्छी अङ्गरेज़ी बोलते थे—उनका उच्चारण ऐसा अच्छा था—कि यदि वे एक कमरे के किवाड़ बन्द करके भीतर से बोलें तो बाहर से सुननेवाले अँगरेज़ों को भी कभी स्वप्न में भी यह सन्देह न हो कि कोई हिन्दुस्तानी बोल रहा है। ऐसा अद्वितीय वक्ता, हेड मास्टर, पाने का ग्रिफ़िथ साहब को बड़ा गर्व था। वे बहुधा पण्डित जी के कमरे में आते थे; परन्तु सुनते हैं पण्डित जी उनके कमरे में, बिना बुलाये कभी नहीं जाते थे। जब कोई अंगरेज़ अधिकारी कालेज में आता था तब ग्रिफ़िथ साहब उसे पण्डित जी से अवश्य मिलाते थे और उनकी विलक्षण वक्तृता उसे सुनाते थे। उनके एक विद्यार्थी का कथन है कि एक बार मिश्र जी लड़कों को पढ़ा रहे थे कि अध्यापक केबुल साहब ने अपने कमरे में उनको बुलाया। उस समय, शीघ्रता में, पण्डित जी के मुँह से निकल गया:—Let the boys be explained the passage. पर, कहना चाहिये था:—Let the passage be explained to the boys. इसका पण्डित जी को बहुत दिनों तक रंज रहा।

विलायत जाने के पहिले बनारस कालेज के भूतपूर्व प्रधानाध्यापक (प्रिंसिपल) जेम्स, आर, बालेण्टाइन साहब, एल. एल. डी., ने पण्डित जी को जो सरटीफ़िकट दिया है उसमें उन्होंने मानो पण्डित जी का जीवनचरित थोड़े में कह सुनाया है। उसमें और और बातों के सिवा पण्डित जी की नियम-निष्ठा, विद्या-प्रेम, कार्य-दक्षता और सच्चरित्रता की भी ख़ूब प्रशंसा है। उसकी यथा-तथ्य नक़ल हम नीचे देते हैं:—

Ever since I first joined the Benares College, I have known Babu Mathura Parsad Misra. He was then a senior scholar, in the last year of his pupilage, and at the top of his class.

In 1846 he was sent, under the orders of Government, to Ghazipur to study Civil Engineering with the Engineer then there. On his return from Ghazipur he studied Law and the Government Regulations. Afterwards the third mastership of the college becoming vacant, and no quite suitable person being found to fill it, the Local Committee appointed him, in April 1847, to officiate as Third Master. After nearly seven years' trial the Government confirmed him in the appointment. In the beginning of 1857, the late Honourable Mr. Colvin, the Lieutenant-Governor of the North-Western Provinces, summoned him to his camp, put him through an examination, and as a mark of approbation, presented him with a watch, at the same time promoting him to the Second Mastership, which was then vacant. He has been punctual and zealous in the discharge of his duties, and as a teacher, he has always given great satisfaction to the Head Master, Professor Griffith. I have been glad to observe that he has always continued to show himself singularly fond of study, and I believe his labours as a teacher have not been confined to school-hours.

He is a polite and well-bred man, and his conduct and character are, to the best of my belief, unimpeachable.

I give him this testimonial on my leaving India finally.

(Sd). JAMES R. BALLANTYNE,
Principal and Secretary, L. C. P. I.

BENARES COLLEGE:
The 13th December, 1860.

इस सरटीफ़िकेट की तारीख़ १३ डिसम्बर १८६० ईसवी है।

पण्डित मथुराप्रसाद ने कई पुस्तकें लिखी हैं। उन में से कुछ के नाम हम नीचे देते हैं—

नम्बर नाम		समाप्त होने का समय
१—लघुकौमुदी का हिन्दी-अनुवाद	... ...	१४ आक्टोबर, १८५६ ई०
२—बाह्यप्रपञ्चदर्पण	... ...	१८५९ ई०
३—Trilingual Dictionary अर्थात् त्रैभाषिक कोश (हिन्दी, उर्दू, अङ्गरेज़ी)	...	दिसम्बर, १८६५ ई०
४—तत्वकौमुदी (व्याकरण) का हिन्दी-अनुवाद	...	एप्रिल, १८६८ ई०
५—प्राइमर ...	... ...	२५ जुलाई, १८६८ ई०
६—प्रैक्टिकल इँगलिश	... .	दिसम्बर, १८७३ ई०
७—सिलेक् रूट्स ...	... ...	नहीं मालूम
८—मन्त्रोपदेश-निर्णय	... ...	नहीं मालूम
९—चाणक्य-नीतिदर्पण	... ...	नहीं मालूम

इन पुस्तकों में से प्रैक्टिकल इङ्गलिश और त्रैभाषिक कोश बड़े काम की पुस्तकें हुईं। प्रैक्टिकल इङ्गलिश तो बहुत दिनों तक स्कूलों में जारी थी। उस में अंगरेज़ी लिखने के नियम और वाक्यों के उदाहरण बहुत ही अच्छे हैं। इस पुस्तक का संशोधन स्वयं ग्रिफ़िथ साहब ने किया था। अँगरेज़ी-प्रचार में इस पुस्तक ने बड़ी सहायता पहुँचाई। स्कूल में हमने भी इसे पढ़ा था। उस का बीज अभी तक हमारे हृदय में है।

Little boys often lose their lives by going into deep water.

इत्यादि वाक्य अभी तक हमको याद हैं। यह पुस्तक यद्यपि इस समय स्कूलों में नहीं पढ़ाई जाती, तथापि अंगरेज़ी में शीघ्र प्रवेश पाने की इच्छा रखने वाले इसे अब भी बड़े प्रेम से पढ़ते हैं।

परन्तु त्रैभाषिक कोश लिख कर पण्डित जी ने सबसे अधिक नाम पैदा किया। उससे सर्व-साधारण को लाभ भी ख़ूब पहुंचा। इस कोश को देख कर इस प्रान्त को गवर्नमेण्ट इतनी ख़ुश हुई कि उसने पण्डित जी को ५००) रुपये की क़ीमत की ख़िलत दी और यह सनद भेजी—

SUNUD.

To
BABU MATHURA PARSAD,
SECOND MASTER, BENARES COLLEGE,
Benares.

SIR,

The Honourable the Lieutenant-Governor, North-Western Provinces, having been informed of the accuracy and scholarship displayed in the Trilingual Dictionary, on the preparation of which you have expended the labour of several years, has been pleased, in order to mark his approbation of the service rendered by you to the cause of education, to confer a Khillut upon you of the value of Rupees 500, which will be presented to you by the Commissioner of the Benares Division.

(Sd.) R. SIMSON,
Secretary to the Government of N.-W. P.

ALLAHABAD:
The 2nd of April, 1866.

गवर्नमेण्ट ने पण्डित जी की विद्वत्ता की प्रशंसा उत्कीर्ण कराकर एक सोने का पदक उनको पुरस्कार में दिया और उसके साथही हीरा लगी हुई सोने की एक क़लम। यही ख़िलत थी। इस कोश के बनाने में पण्डित जी को बड़ा परिश्रम पड़ा। पर ग्रन्थ बहुत अच्छा बना। उन्होंने इस में अंगरेज़ी शब्दों की उत्पत्ति और उनके अर्थ अंगरेज़ी, हिन्दी और उर्दू में बड़ी ही योग्यता से लिखे हैं। इसकी

प्रशंसा उस समय के प्रायः सभी अंगरेज़ी अख़बारों ने की थी। इसकी समालोचना जिसे देखना हो वह १३ फेब्रुअरी, १८६६, का देहली-गज़ट, १५ फेब्रुअरी १८६६, का फ्रेण्ड आफ़ इण्डिया, २४ फेब्रुअरी १८६६, का वीकली-न्यूज़ और २६ फेब्रुअरी, १८६६, का पायनियर देखे। इङ्गलैण्ड के अख़बारों ने भी इस की ख़ूब प्रशंसा की थी। सचमुच पण्डित जी ने इस कोश में अपनी अपार विद्वत्ता का परिचय दिया है। यह पुस्तक उन्होंने बनारस के मेडिकल हाल प्रेस के मालिक, डाक्तर लाज़रस, को दे दी। उन्हींने इसे छापा। वही प्रेस इसे अब तक बेंचता है। कोशों में इसका बड़ा आदर और प्रचार है।

पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र हिन्दी के बड़े पक्षपाती थे। यह बात उन्होंने अपने कोश में अच्छी तरह स्पष्ट कर दी है। हिन्दी में उनकी कैसी पूज्य बुद्धि थी; उसके प्रचार को वे कहां तक अच्छा समझते थे; और उसे वे कितने विस्तार और कितनी योग्यता का जानते थे—यह बात उन्होंने अपने कोश की भूमिका में बड़ी दृढ़ता से, साफ़ साफ़, लिखी है। उनके अङ्गरेज़ी लेख का कुछ अंश हम नीचे देते हैं—

The easiest common Hindi should be employed, wherever it will suffice. But when its resources fail, preference should decidedly be given to Sanscrit over a foreign tongue There may be instances in which the reverse will hold good. But these instances must form the exception, not the rule. In cases in which the stores of Hindi would answer well, exotic words should not be used in writings, professedly Hindi. With every regard for those that differ from me, I aver that their favorite jargon—by no better name can I call their language—the farrago of Arabic, Persian, Urdu, Sanscrit and Hindi—serves, at best, only to provoke a contemptuous smile in men of taste. But some would perhaps *kill* Hindi. They think it is dismissed from society, and is, therefore, synonymous with rusticity,—that it leads to no practical good, hence it must needs be discouraged. They should bear in mind that Hindi has retired from the Court and general society by the force of circumstances.

The encroachments of Persian and Urdu have proved too much for it. Its case is analogous to that of English immediately after the Norman conquest. The language of the Conquerors became the language of Law and, likewise, of Society, to a very large extent. But though Hindi, like a modest maid, has withdrawn from the public gaze in towns and cities, yet it has ever been present around our hearths, and amid our family circles. Our mothers and sisters, our wives and daugthers, exchange ideas only in genuine forms of Hindi. Gentlemen in the highest walks of life, while in the public audience, do hold converse in elegant Urdu. But when they are by themselves, with their dependents, or among their female relations, the scene is changed. Good home-bred expression of Hindi then almost exclusively escape their lips or charm their ears. I now ask, why should Hindi spoken at home by the greatest and the most learned be described as barbarous? Again, on the ground of utility too, Hindi merits encouragement. Beyond the pale of law, Hindi is found more useful than Urdu. In ordinary life, the former is more serviceable to Hindus than the latter. It is needed in the pettiest grocer's shop as well as in the most respectable firm. In the rural districts, its use is more general. It does not, indeed, help us to good situations. But that does not warrant us in desiring its extinction.

There are far higher ends to be served. The character of the mass of the people is to be raised. They must be taught to read and write—must be made to learn the truths of the West—not in the language of those by whom they were ill-treated, abused, and oppressed for successive generations, but in the genial speech of their ancestors, which is their invaluable inheritance. National education must be conducted through the *proper* Vernacular, if we desire success.

सरस्वती के पढ़ने वालों में से जो अंगरेज़ी जानते हैं, हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे इस कोश की भूमिका को अवश्य पढ़ें। इससे हिन्दी के विषय में पण्डित जी की राय अच्छी तरह मालूम हो जायगी और उनको अंगरेज़ी का नमूना भी देखने को मिल जायगा।

पण्डित जी को तत्वकौमुदी और उन का किया हुआ लघुकौमदी का हिन्दी-अनुवाद भी

हमने देखा है। दोनों बहुत अच्छी पुस्तकें हैं। उनकी और पुस्तकें देखने का हमको सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। अतः हम नहीं जानते कि बाह्यप्रपञ्च-दर्पण, मंत्रोपदेशनिर्णय और चाणक्य-नीतिदर्पण संस्कृत में हैं या हिन्दी में। ये पुस्तकें क्यों लिखी गईं, कितनी बड़ी हैं और कैसी हैं, यह भी हम नहीं जानते। पण्डित जी का वृत्तान्त बतलानेवाले ऐसे हैं कि शिव, शिव!

पण्डित मथुराप्रसाद जी के पिता, पण्डित सेवकराम जी, पुत्र के पेंशन लेने के कई वर्ष पीछे तक जीवित थे। १८८७ ईसवी में, ९६ वर्ष के होकर, वे परलोकगामी हुए। उनकी और्ध्व-देहिक क्रिया मिश्र जी ने विधिपूर्वक की और अन्त तक वे श्राद्ध तथा तर्पण करते रहे।

पण्डित जी बड़े ही कर्म्मठ ब्राह्मण थे। उनके बराबर धर्म्मभीरु और पुरानी चाल ढाल का आदमी शायदही कोई और हो। उनको छुवाछूत का बड़ा बिचार था। कालेज में ऐसे वैसे आदमी उनके कमरे में न आने पाते थे। वे बरामदे में रहते थे और आप अपने कमरे के भीतर से उनसे बातें करते थे। पीछे पीछे से तो वे हिन्दुओं तक को छूने में हिचकते थे। एक बार हमारे एक मित्र उनसे मिलने गये। उनके डाढ़ी थी। उसे देखकर मिश्र जी ने उन्हें बाहर ही रोका; भीतर आनेही न दिया। जब उनको मालूम हुआ कि आगन्तुक व्यक्ति हिन्दू है और उनका विद्यार्थी है, तब आपने उन्हें भीतर बुलाया। आगन्तुक ने भीतर जाकर भक्ति के उद्रेक में मिश्र जी के चरणस्पर्श किये। मिश्रजी ने आशीर्वाद तो दिया परन्तु तत्कालही अपने सिर पर गङ्गाजल छिड़का! अच्छा हुआ हम उनको दूर ही से प्रणाम करते रहे। नहीं तो उन्हें बार बार अपने ऊपर जल छिड़कने का कष्ट उठाना पड़ता।

मिश्र जी जब तक कालेज में थे तब तक प्रातः-काल ४ बजे उठते थे, और शौच से निवृत्त होकर, गङ्गास्नान करते थे। फिर सन्ध्योपासन और विष्णु-सहस्रनाम का पाठ करके वे लेखन और पुस्तका-वलोकन में लग जाते थे। ९ बजे भोजन करके वे कालेज जाते थे और वहां से ४ बजे आते थे। आकर कालेज के कपड़े उतार कर वे अलग रख देते थे। तब गङ्गाजल ऊपर छिड़क कर वे धोये हुए कपड़े पहनते थे और फिर पुस्तकावलोकन में मग्न हो जाते थे। अनन्तर, सायंसन्ध्योपासन करके, फिर भी वे पुस्तक हाथ में ले लेते थे। रात को वे केवल दूध पीते थे। यह दिनचर्य्या उनकी बराबर ३२ वर्ष तक बनी रही। मिश्र जी के पुत्र पण्डित शिव-नन्दनप्रसाद ऐसाही कहते हैं। परन्तु क्या इस ३२ वर्ष के लम्बे समय में मिश्र जी कभी किसीसे न मिलते थे? उनके मिलने का समय तो इस दिनचर्य्या में कहीं नहीं आया। उनके एक विद्यार्थी का कहना है कि पण्डित जी भ्रमण के लिये भी जाया करते थे और शाम को लोगों से मिलते भी थे। वे यह भी कहते हैं कि सबेरे मिश्र जी केवल जल-पान करके कालेज जाते थे; भोजन वे नित्य सायंकाल ही को करते थे। पर हमने दोनों बातें यहां पर लिख दीं।

पेंशन लेने पर पण्डित जी की दिनचर्य्या बदल गई थी। उस समय वे सबेरे उठकर गङ्गा-स्नान करते थे। फिर गायत्री का जप। गीता-पाठ और तर्पण इत्यादि करते ११ बजते थे। तब वे अपने हाथ से भोजन बनाते थे। कभी कभी वे महीनों तक केवल दूध पीकर रह जाते थे। दोपहर से ४ बजे तक वेदान्त का विचार करते थे; फिर लोगों से मिलते थे। सायङ्काल, सन्ध्योपासन के अनन्तर, वे फिर कुछ जप इत्यादि करते थे। ८ बजे वे दूध पीते थे। तब एकान्त में बैठ कर वे माला फेरते थे। रात को १० बजे वे सोते थे। इस प्रकार १९ वर्ष तक अपनी दिनचर्य्या रख कर १८ नवम्बर, १८९७ ईस्वी को, ७२ वर्ष की उमर में, काशी में, गंगा के तट पर, उन्होंने शरीरत्याग किया। उस दिन उनके सम्मान में बनारस कालेज बन्द रहा।

पण्डित जी हिन्दी, संस्कृत, अँगरेज़ी और बँगला, ये चार भाषायें जानते थे। संस्कृत आप अच्छी जानते थे। अच्छी यदि न जानते तो व्याकरण का हिन्दी-अनुवाद कैसे कर सकते? उनमें अंगरेज़ी कि विद्वत्ता बहुत बड़ी थी। उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है; आगे भी कुछ होगा। सुनते हैं आप फ़ारसी भी जानते थे।

बनारस के बाबू श्यामाचरण, सबजज, गवर्नमेण्ट कालेज के प्रधान धर्म्माध्यक्ष पण्डित देवदत्त और पण्डित शिवनारायण मिश्र, पण्डित मथुराप्रसाद के आभ्यन्तरिक मित्र थे।

पण्डित मथुराप्रसाद बड़े संयमी, बड़े नियमनिष्ठ और बड़े ही संचयी थे। संयम का यह हाल था कि इनके गांव बकसर में लोगों ने इनको भोजन की सामग्री तौल कर खाते देखा है। नियमनिष्ठा इनकी ऐसी थी कि जो समय इन्होंने मिलने का रक्खा था उसका अतिक्रम करके और किसी समय किसीसे ये न मिलते थे, मिलनेवाला चाहे कैसा ही बड़ा आदमी क्यों न हो। सञ्चयशीलता भी इनकी बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी। इन्होंने बहुत धन इकट्ठा किया। सुनते हैं ये अपना रुपया रियासतों को ब्याज पर देते थे। उसमें बहुत सा रुपया डूब भी गया। इनके पुत्र ने कोई व्यापार किया था; उससे भी शायद कुछ रुपया घाटे में गया। परन्तु मिश्र जी ने अपने रुपये का बहुत कुछ सद्व्यय भी किया। कुछ समय से ये अपने वंशज हिमकर के मिश्रों की असहाय विधवाओं को दो रुपया महीना वृत्ति देने लगे थे। निर्धनता के कारण जिन हिमकरवंशीय उपवर कन्याओं का विवाह नहीं हो सकता था, उनके विवाह के लिये भी ये रुपया देते थे। यह प्रबन्ध मिश्र जी के पुत्र पण्डित शिवनन्दनप्रसाद भी, सुनते हैं, थोड़ा बहुत चलाये जाते हैं।

पण्डित मथुराप्रसाद बड़े ही दृढ़प्रतिज्ञ थे। आज्ञाभङ्ग से क्रोध भी उनको महाकाल ही का ऐसा आता था। पढ़ने लिखने या शायद और किसी विषय में अपनी आज्ञा का उल्लंघन करने के अपराध में, उन्होंने अपने एकमात्र पुत्र शिवनन्दनप्रसाद को अलग कर दिया और शायद अन्त तक पिता पुत्र से प्रत्यक्ष बात चीत नहीं हुई। मिश्र जी के पिता और मिश्र जी की पत्नी ने पण्डित शिवनन्दनप्रसाद का साथ छोड़ना न चाहा। इस लिए मिश्र जी उनसे भी अलग हो गये। ये अलग रहते रहे और वे अलग। परन्तु मिश्र जी ने उनको कमी किसी बात की नहीं होने दी। उनके आराम से रहने का प्रबन्ध आपने बहुत अच्छा किया। पीछे से उन्होंने अपना यह पृथक्त्व कुछ शिथिल कर दिया था।

पण्डित जी के अनन्तर उनकी जायदाद के पूरे मालिक उनके पुत्र पण्डित शिवनन्दनप्रसाद हुए हैं। ये भी सज्जन हैं; संस्कृत जानते हैं; और अंगरेज़ी में भी इनको बोध है। यह क्या करते हैं, हम ठीक ठीक नहीं जानते। सम्भव है, इन्होंने कुछ ज़मीदारी इत्यादि मोल ली हो; या लेन देन का सिलसिला जारी किया हो; और उसीमें लगे रहते हों। इनकी इच्छा थी कि अपने पिता के नाम से एक छोटा सा वैदिक पाठशाला बनारस में जारी करें। शायद यह पाठशाला खुल भी गया है। दशाश्वमेध घाट पर, ठीक गङ्गा के किनारे, पण्डित मथुराप्रसाद का बनाया हुआ एक मकान है। उसी में शायद यह पाठशाला खुला है। क्या पढ़ाया जाता है, कितने अध्यापक हैं, कितने छात्र हैं, क्या नियम हैं, यह हमें मालूम नहीं।

दशाश्वमेध घाटवाले मकान के सिवा बनारस में पण्डितजी के और भी दो एक मकान हैं। उनके गांव बकसर में भी उनका एक मकान है। पण्डित जी के जीवनकाल में बकसरवाला मकान बिलकुल कच्चा था और बुरी हालत में था। पर पण्डित शिवनन्दनप्रसाद ने उसका जीर्णोद्धार कर के उसे अच्छा बना दिया है।

पण्डित शिवनन्दनप्रसाद के कोई सन्तति नहीं है। इस कारण उन्होंने एक युवक को गोद लिया

है। हम नहीं जानते कि सुयोग्य पण्डित शिवनन्दन प्रसाद ने अपने दत्तक पुत्र की शिक्षा दीक्षा का क्या प्रबन्ध किया है। उनसे हमारी प्रार्थना है कि यह समय सिर्फ़ सामगायन का नहीं। कुछ और भी करना चाहिए, जिसमें पण्डित मथुराप्रसाद ऐसे विख्यात विद्वान् के वंश में विद्या का ह्रास न हो। क्योंकि मिश्र जी बहुत बड़े विद्वान् थे। बड़े बड़े अंगरेज़ पण्डित तक उनको आदर की दृष्टि से देखते थे। प्रसिद्ध पण्डित हाल साहब ने हिन्दी रीडर नाम की एक पुस्तक बना कर उसे मिश्र जी को समर्पण किया था। बनारस से चले जाने पर भी ग्रिफ़िथ साहब नीलगिरि से मिश्र जी से पत्र व्यवहार रखते थे। अतएव उनके वंशजों में विद्या का बना रहना बहुत आवश्यक है।

पण्डित मथुराप्रसाद से हमारा प्रत्यक्ष परिचय था। पेंशन लेने बाद गरमी के दिनों में वे अपने गाँव बकसर जाया करते थे। वहां वे दो तीन महीने रहते थे। वर्षा का आरम्भ होने पर वे बनारस लौट आते थे। इन्हीं दिनों में जब हम अपने घर छुट्टी पर जाते थे तब पण्डित जी से मिलते थे। प्रेमपूर्वक वे हमसे मिलते थे और जल्दी जल्दी आने के लिए अनुरोध करते थे। पहले दिन जब हम आप से मिलने गये तब हमने देखा कि आप पैरों में किरमिच का जूता पहने, सिर घोटाये, मस्तक पर चन्दन का खैार लगाये, कन्धे पर एक छोटा सा मोटे कपड़े का अँगौछा रक्खे, और बदन में मोटे कपड़े की सिर्फ़ धोती पहने हुए, अपने कच्चे मकान की चौपाल में खड़े हैं। पासही एक छोटी सो चारपाई बिछी है। उसके बीच में एक छोटा सा, शायद गाढ़े का, बिछौना बिछा है। सिरहाने, तकिये के नीचे, लाल जिल्द की एक किताब रक्खी है। हमारे साथ, उन्हींके गाँव के एक पण्डित थे। परिचय होने पर आपने अनेक विषयों पर हम से बात चीत की। संस्कृत-कविता पर भी बात चली। बातों बातों में कोई ऐसा मौक़ा आया कि हमने बिल्हण का यह श्लोक पढ़ा—

प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीतिव्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः पदानाम्।
अत्युन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि वन्द्यानि कान्ताकुचमण्डलानि॥

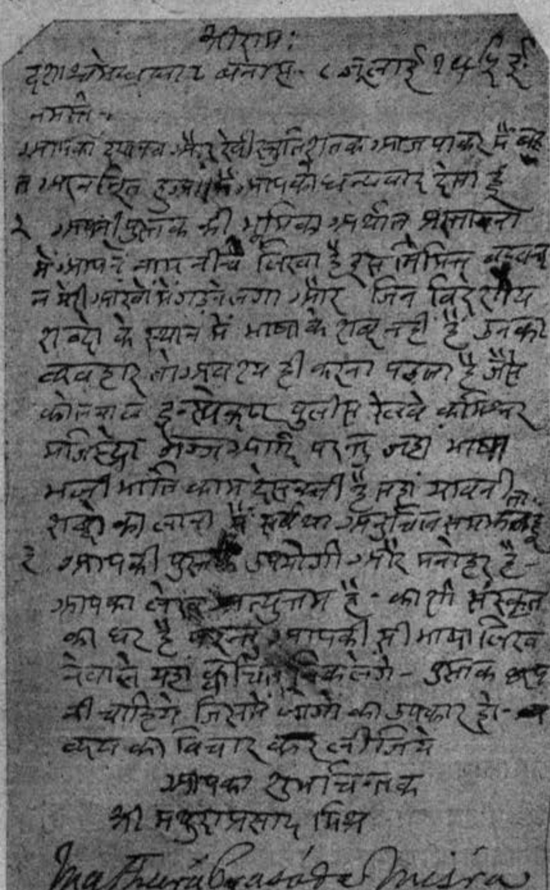
इसके अर्थ का विचार करके आप बेतरह हँस पड़े। तब से, जब कभी हम जाते थे, दो एक श्लोक हम से सुने बिना आप न रहते थे। मिश्र जी को एक बात की बड़ी शिकायत थी। वे कहते थे कि हमारी तरफ़ के संस्कृत-पण्डितों का उच्चारण प्रायः बहुत ही अशुद्ध होता है। यह बात बहुधा है भी ठीक। इसीसे शुद्धोच्चारणपूर्वक कहे गये श्लोक सुन कर वे बहुत प्रसन्न होते थे। उच्चारण में वे दाक्षिणात्य पण्डितों की प्रशंसा करते थे। इसीसे, वे कहते थे, कि पण्डित शिवनन्दनप्रसाद को पढ़ाने के लिए उन्होंने एक दक्षिणदेशीय पण्डित को रक्खा था।

पूछने पर मालूम हुआ कि तकिये के नीचे जो पुस्तक थी वह गीता थी; परन्तु थी वह अङ्गरेज़ी में। इस पर हमने आक्षेप किया। आपने उत्तर दिया कि लड़कपन से हम अंगरेज़ी के प्रेमी हैं; हमारी रग रग में अङ्गरेज़ी घुसी हुई है। इस अवस्था में हमने और अङ्गरेज़ी की पुस्तकें देखना बन्द कर दिया है। अब सिर्फ़ गीता में अङ्गरेज़ी पढ़कर हम समाधान मानते हैं।

पण्डितजी देहात में देहातियों के साथ ऐसी अच्छी ग्रामीण भाषा बोलते थे कि सुन कर आश्चर्य होता था। जान पड़ता था कि ये महा अपढ़ और पूरे देहाती हैं।

हमने "तरुणोपदेश" नामक एक पुस्तक लिखी है। पुस्तक बड़ी है। उसे लिखे गये कोई १० वर्ष हुए। किसी कारण से उसे हमने प्रकाशित नहीं किया। उसे हमने पण्डित मथुराप्रसाद जी को दिखलाया। गीता और उस पुस्तक के विषय से बहुत विरोध था। तथापि आपने उसे कृपापूर्वक साद्यन्त देखा, और बनारस जाकर, उसकी समालोचना हमारे पास भेजी। उसमें उर्दू और अङ्गरेज़ी के जो शब्द आ गये थे उनको आपने पसन्द न किया। इस सम्बन्ध में आपने हमको एक

पोष्टकार्ड भेजा। उसका फ़ोटो-चित्र हम नीचे देते हैं—



श्रीराम:
[illegible] बनारस ८ जूलाई [illegible]
नमस्ते
आपका [illegible] और [illegible] पाकर मैं बहुत आनन्दित हुआ। मैं आपको धन्यवाद देता हूं
२ आपकी पुस्तक की भूमिका अर्थात् प्रस्तावना में आपने नाम नीचे लिखा है इस [illegible] न मेरी आखों में गड़ने लगा और जिन विदेशीय शब्दों के स्थान में भाषा के शब्द नहीं हैं उनको व्यवहार तो अवश्य ही करना पड़ता है जैसे कोलेक्टर इन्स्पेक्टर पुलीस रेलवे कमिश्नर मजिस्ट्रेट [illegible] परन्तु जहां भाषा भली भांति काम दे सकती है वहां यावनी शब्दों को लाना मैं सर्वथा अनुचित समझता हूं
३ आपकी पुस्तक उपयोगी और मनोहर है आपका [illegible] है - काशी संस्कृत की घर है परन्तु आपकी सी भाषा लिखनेवाले यहां कोई [illegible] - [illegible] चाहिये जिसमें आगे को उपकार हो - [illegible] को विचार कर लीजिये
आपका शुभचिन्तक
श्री मथुराप्रसाद मिश्र
Mathura Prasada Misra

जान पड़ता है पण्डित जी के अपना नाम अङ्गरेज़ी में लिखने का बड़ा शौक़ था। क्योंकि इस पोस्टकार्ड के नीचे हिन्दी में अपना नाम एक बार लिखकर दुबारा उसे आपने अङ्गरेज़ी में भी लिख दिया है। आप अनावश्यक "यावनी" शब्दों के पक्षपाती न थे। पर इस पोस्टकार्ड के ऊपर हमारा पता लिखते समय गांव दौलतपुर न लिखकर, जल्दी में, आप "मौज़ा दौलतपुर" लिख गये हैं!

पण्डितजी के हमने बहुतसी चिट्ठियां लिखी होंगी। उनमें से कोई कोई बहुत बड़ी और महत्व की थीं। परन्तु हमको उत्तर सदैव आपने पोस्ट कार्ड ही पर दिया। आप कार्ड में भी पाराग्राफ़ अलग लिखते थे और सब में नम्बर देते थे। नीचे आप अपना नाम हिन्दी में 'श्रीमथुराप्रसाद मिश्र" लिख कर अङ्गरेज़ी में "M. P. M." या Mathura Prasada Misra लिख दिया करते थे। एक बार हमने धृष्टता से इस अनावश्यक M. P. M के लिखे जाने का कारण पूछा। उत्तर मिला, कि "आप हमसे हिन्दी में चिट्ठी लिखवाते हैं, तो क्या हम अपने नाम के आदि अक्षर भी अङ्गरेज़ी में न लिखें? हम को इनके लिखने का इतना अभ्यास है कि आपसे आप ये हमारी लेखनी से निकल जाते हैं"।

हम ऊपर लिख आये हैं कि मिश्रजी अपने वंश की निर्धन कन्याओं के विवाह के लिए धन-सम्बन्धिनी सहायता देते थे। एक बार हमने आप से एक कन्या के विवाह के विषय में कहा। यह कन्या उनके वंश की न थी; पर कुलीनता में उससे बढ़ कर थी। परन्तु आपने सहायता देने से इनकार कर दिया। आपने कहा कि हम अपने ही वंशवालों की सहायता करना अपना पहला कर्तव्य समझते हैं। पहले घरवालों की सहायता की जाती है। फिर बाहर वालों की। इस पर हमने उनके सिरहानेवाली गीता की पुस्तक के "पण्डिताः समदर्शिनः" वाले श्लोक का उनको स्मरण दिलाया। इस पर आप चुप हो रहे। परन्तु यह बात हम यहां पर स्वीकार करना चाहते हैं कि, इस विषय में, भूल हमारी ही थी, उनकी नहीं।

पण्डित मथुराप्रसादजी ने अपने विषय में, अपनेही मुँह से, जो दो एक बातें हमसे कही हैं उनको लिखकर हम इस लेख को पूरा करना चाहते हैं।

पण्डित जी के छात्रों में अनेक ऐसे हुए जिन्होंने बहुत ऊंचे ऊंचे पद पाये। सैयद महमूद और कुँवर भारतसिंह इत्यादि उन्हींके छात्रों में से हैं। जिस समय सैयद महमूद इलाहाबाद में हाईकोर्ट के जज थे, उस समय पण्डित जी एक बार उनसे

मिलने गये। सैयद महमूद के पिता सैयद अहमद भी वहां मैाजूद थे। सैयद महमूद के कमरे में एक बहुमूल्य क़ालीन बिछा था। और पण्डित जी के देशी जूते धूल में लिपटे हुए थे। इससे उन्होंने जूतों को कमरे के बाहरही उतार दिया। सैयद महमूद ने यह देख कर कुछ इशारा किया; और उनके नैाकर ने जूतियों को दरवाज़े के बाहर से लाकर, कमरे में क़ालीन के ऊपर, मिश्र जी के पैरों के पास, रख दिया। इस पर पण्डित जी ने क़ालीन के मैले हो जाने की बात कही। तब सैयद महमूद ने यह कह कर पण्डित जी को प्रसन्न किया कि आप के इस धूलि-धूसर जूते की धूलिही के प्रसाद से यह क़ालीन मुझे मयस्सर हुआ है। सैयद साहब, पिता-पुत्र दोनें, ने मिश्र जी का इतना आदर किया जितना कोई किसी देवता का करता है। उनके सत्कार से पण्डित जी बहुत ही प्रसन्न हुए। जान पड़ता है, सैयद महमूद के इतने ऊंचे पद पाने पर मिश्र जी विशेष प्रसन्न थे। यदि ऐसा न होता तो उनके घर जाने की आप कृपा न करते।

इस प्रान्त के शिक्षा-विभाग के भूत-पूर्व प्रधान अफ़सर (डाइरेक्टर) नेस्फ़ील्ड साहब ने अंगरेज़ी में एक व्याकरण बनाया है। उसे उन्होंने पण्डित मथुराप्रसाद को दिखलाया और इनसे उसकी समालोचना चाही। पण्डित जी ने इस व्याकरण के कुछ अंश की समालोचना की। समालोचना बहुत लम्बी हुई। उसमें इन्होंने साहब के अनेक प्रमाद सप्रमाण सिद्ध किये। इस पर दोनों में बहुत वाद-विवाद हुआ। जब नेस्फ़ील्ड साहब प्रत्यक्ष मिले तब पण्डित जी ने, अनेक प्रामाणिक अंगरेज़ी ग्रन्थ उनके सामने रख कर, अपने पक्ष का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि जहां जहां हमने भ्रम बतलाया है वहां वहाँ या तो आप दोषी हैं या आपके पूर्ववर्त्ती ग्रन्थकार। दोनों निर्दोष नहीं हो सकते। यह झगड़ा फ़ैसले के लिए ग्रिफ़िथ साहब के पास गया। उन्होंने पण्डित जी का पक्ष सही और नेस्फ़ील्ड साहब का पक्ष ग़लत बतलाया!

एक बार पण्डित जी ने स्वयं ग्रिफ़िथ साहब के लेख में व्याकरण-सम्बन्धी एक शङ्का की। यह शङ्का वाल्मीकि रामायण के अनुवाद में, एक जगह, उनको हुई थी। परन्तु इसका जो समाधान ग्रिफ़िथ साहब ने किया उससे पण्डित जी को पूरा पूरा सन्तोष हो गया। ग्रिफ़िथ साहब पण्डित जी पर बहुत प्रसन्न थे; पण्डित जी पर उनकी पूरी कृपा थी। जिस समय नीलगिरि में ग्रिफ़िथ साहब वेदों का अंगरेज़ी-अनुवाद करते थे उस समय, कभी कभी, पत्रद्वारा, अनुवाद के विषय में वे पण्डित जी से सलाह लेते थे।

निद्रा।

[इस कविता का पूर्व्वार्द्ध कवि 'सौदि' (Southey) के 'स्लीप' (Sleep) नामक पद्य का भावार्थ है और उत्तरार्ध लेखक की ही कल्पना है।]

[१]

मधुर नींद, जो राज-भवन तज,
रङ्क-कुटी में करै प्रवेश;
मधुर नींद, जो विनय कृषक का
सुनै; किन्तु नहिं राज-निदेश;

[२]

मधुर नींद, जो श्रमित दृगों को
सुख से मुद्रित करती है;
मधुर नींद, जो अतिशय दारुण
मनस्ताप सब हरती है;—

[३]

है तू यद्यपि ऐसी सुभगा
तद्यपि तेरा न्याय कठोर;
तू कदापि है नहीं झाँकती
पापी, अपराधी की ओर।

[४]

पड़ता नहीं हृदय में उनके
तेरा सुखकर मृदुल प्रभाव;

वरन् निरन्तर ही रहता है
चित्तशान्ति का वहां अभाव।

[५]

रहै जहां अपराध उपस्थित
वहां नहीं है तेरा वास;
कलुषित मन का राज्य जहां है
कभी न वहां फटकती पास।

[६]

शान्तियुक्त तेरे सुराज्य में
लोभ, गर्व पाते नहिँ ठौर;
तुझ से ताड़ित होकर उनको
जाना होता है कहिँ ग्रौर।

[७]

यद्यपि मनुज बुद्धि या बल से
सबही कुछ पा सकता है;
निद्रे, तुझे तथापि नहीं वह
निज वश में ला सकता है।

[८]

फिरती रहती है स्वतन्त्र तू
शैल शैल, कानन कानन;
बाधा नहीं, जिधर जी चाहै
फेरै तू अपना ग्रानन।

[९]

उसे बचावै ईश्वर ही पर
जिस पर तेरी हो न दया,
अब क्या, तब क्या, निःसंशय ही
जान उसे परलोक गया।

[१०]

पर ऐसी भी दया न होवै,
दिन को भी वह रात करै;
सदा ऊंघते अथवा सोते
कुम्भकर्ण को मात करै।

[११]

दया शेषशायी पर तेरी
हो जावै यदि एक निमेष,
लुप्त होंय सब लोक उसी दम
देव, दनुज भी रहैं न शेष।

[१२]

मानव को तो तेरा जादू
ऐसा वश कर लेता है;
आजीविका, प्रतिष्ठा तक को
वह तलाक़ दे देता है।

[१३]

कर्णधार के ऊपर तेरी
यदि सविशेष दया होवै,
तो ग्रौरों की हत्या ले कर
वह निज जीवन भी खोवै।

[१४]

लिनिविच पर हे चिन्ता-भञ्जिनि!
यदि तू दया करै सविशेष,
माञ्चूरिया के झंझट का
झट पट ही हो जावै शेष।

[१५]

देख सिंह को तेरे वश में,
चूहे ने करके साहस,
उसकी मूँछ कतर तक डाली,
देखी तेरी महिमा बस!

[१६]

ऐसी दया हमारे अरिगण
के ही ऊपर रहै सदा;
मनोहरे सर्वदा उन्हीं को
बनो रहै तू सुखप्रदा।

[१७]

भारत-भाग्य से न अब अपना
रख अनुराग अधिक सजनी,
ग्रौर जहां जी चाहै तेरा
हो स्वच्छन्द बिता रजनी।

[१८]

उस पर अपनी दयादृष्टि रख
बना न उसको निज आसक्त;

न हो स्वयं तू भी हे निर्द्र,
केवल उस ही पर अनुरक्त ।

सनातन शर्म्मा सकलानी ।

"मेरी चम्पा"

[लाला पार्व्वतीनन्दन कृत 'मेरी चम्पा' के चरित-नायक की भावना के अनुसार लिखित । सरस्वती, भाग ६, पृष्ठ १४०, पैरा ६, देखिए ।]

[१]

मेरी चम्पा चतुर नवेली;
भाती मुझको वही अकेली ।
रम्य रूप सुकुमारी है;
प्राणों से भी प्यारी है ॥

[२]

आनन क्या ही भोला भाला;
नयनों को ललचाने वाला ।
कैसा उसका ढंग निराला;
प्रेममत्त मुझ को कर डाला ॥

[३]

उसका मुझ पर आँख लगाना;
मुझे देखते देख लजाना ।
आनन अञ्चल-ओट छिपाना,
अति, अतितर, अतितम मनमाना ॥

[४]

पर यदि चाहूँ, आप निहारूँ;
अपना तन मन उस पर वारूँ ।
चाहै कितना ही सिर मारूँ,
वृथा यत्न सब करके हारूँ ॥

[५]

जब उसके जी में आती है
तभी दरस वह दिखलाती है ।
चातक क्यों न सदा हो तरसै,
पर वर्षा जब चाहै, बरसै ॥

[६]

जब वह कोकिल-कण्ठ लजाती,
बात किसी मिस मुझे सुनाती ।
मन मेरा मुझसे भगता है;
उसी कण्ठ से जा लगता है ॥

[७]

नूपुर-धुनि जब मैं सुन पाता,
तन में तड़ित्तुल्य कुछ आता ।
तब होता जो हाल, विधाता !
वर्णन उसका किया न जाता ॥

[८]

जब वह निज विधु-वदन दिखाती;
सुधा दृष्टि-द्वारा बरसाती ।
विरहानल-विदग्ध मम छाती
तत्क्षणही शीतल हो जाती ॥

[९]

उसका खिलता यौवन-कानन,
उसका खिला कमल सा आनन,
देख देख मेरा मधुकर-मन
हो जाता उसके ही अर्पन ॥

[१०]

मेरे नयनों का प्रिय तारा
जिसके बिना हृदय अँधियारा ।
मेरा केवल एक सहारा,
है वह रमणी-रत्न पियारा ॥

[११]

"जाको जापर सत्य सनेहू
सो तिहि मिलै, न कछु सन्देहू"
तुलसी ने यदि सत्य कहा यह,
क्या न मिलैगी मुझे प्रिया वह ?

[१२]

यदि मेरा अनुराग खरा है;
यदि उसमें छल नहीं भरा है ।
करें शिवा-शिव तो अनुकम्पा;
मुझे दिलादें मेरी चम्पा ॥

* * * * *

[१३]

धन्य आज का दिन शुभकारी;
सफल हुई कामना हमारी।
हुई शिवा-शिव की अनुकम्पा;
मुझे मिल गई मेरी चम्पा॥

सनातन शर्मा सकलानी।

मैं तुम्हारा कौन हूँ ?

[सरकारी बोली में]

मैं तुम्हारा चांद हूं। सूरज भैया ने एक दफ़ः अपना कुछ हाल बतलाकर तुम को उन्होंने अपना रिश्ता समझा दिया था। मुझको उतनी कहा सुनी की ज़रूरत नहीं। तुम सब मेरे तरफ़-दार हो। तुम मुझे चाहते हो; सो मैं अच्छी तरह जानता हूं। पर मेरे बारे में लोगों के कई ख़यालात ग़लत हैं। आज मैं वही बताने के लिये आया हूं।

तुम लोग मुझे बहुत ख़ूबसूरत समझते हो। निशाकर, सुधाकर, हिमांशु, अमृतांशु, शशाङ्क, मृगाङ्क, वग़ैरः कितने ही मीठे मीठे नामों से तुम मुझे पुकारा करते हो। पर मैं हूं असल में कृष्णचन्द्र, यानी स्याह-फ़ाम। तुम्हारी दुनिया की तरह मैं भी काला हूं। मैं भी मिट्टी का धोंधा ही हूं। जब भैया मेरे चेहरे पर रोशनी डालते हैं तभी मैं तुम्हारी दुनिया की तरह गरम हो जाता हूं। तभी तुम लोगों को चाँदनी मिलती है। जब तुम्हारी दुनिया गरमी के मारे तपती रहती है तब वह मेरी नज़रों में बड़ी ही ख़ूबसूरत, रोशनी से जगमगाती हुई जान पड़ती है।

मैं कहां रहता हूं? कितना बड़ा हूं? क्या यह तुम जानते हो? तुम्हारे बच्चे 'चन्दा मामा, चन्दा मामा' कहते हुए अपने नन्हे नन्हे हाथों को फैला कर मुझे पकड़ना चाहते हैं। तुम भी शायद समझते होगे कि बादलों के साथ ही साथ मैं भी दौड़ा करता हूं। पर मैं तुम लोगों से २,३७,६०० मील की दूरी पर पड़ा हुआ हूं। तुम मुझे सूरज भैया के बराबर समझते हो। पर मेरे बराबर सात करोड़ चांद उनकी गोद में छिपकर बैठ सकते हैं! इससे यह न समझना कि मैं किसी छोटे से गोले या गोली की तरह बिलकुल ही छोटा हूं। मेरा घेरा आठ हज़ार मील से भी ज्यादः है। पर हां, मैं तुम्हारी दुनिया से ज़रूर छोटा हूं।

मुझ में जो काले काले दाग़ हैं उन्हें देखकर तुम लोग कितनी ही अक़ल लड़ाया करते हो। कभी तुम समझते हो कि मेरे भीतर बैठी हुई बुढ़िया चरखा कात रही है; कभी समझते हो कि तुम्हारी हसीन औरतों के चेहरों को देखकर मैं शरमा गया हूं और खरगोश का बच्चा गोद में लेकर रो रहा हूं। एक मर्तबा अगर तुम दूरबीन में अच्छी तरह निगाह डालो तो तुम देखोगे कि मेरे चमकते हुए हिस्से पहाड़ी मुल्क हैं, और अँधेरे या काले काले हिस्से गहरी तराइयां हैं। इन नीचे के हिस्सों में भैया की किरणें नहीं पहुंचतीं। इसीसे ये अँधेरे दिखाई पड़ते हैं। मेरी छाती पर २०,००० फ़ुट तक ऊंचे पहाड़ खड़े हैं! सुना!

आदमी अक्सर देवता समझ कर मेरी पूजा भी करते हैं। कोई समझते हैं कि मैं मर्द हूं, कोई औरत। हिन्दूओं ने मुझे दूल्हा बनाकर २७ ताराओं से मेरा व्याह कर दिया है। इसी बुनियाद पर उन्होंने मुझे क्षयी का रोगी भी बना डाला है। ग्रीस वालों ने अपोलो की बहिन डायना कह कर मुझे साया पहना दिया है। कालडिया वालों ने मुझे आठ रथों पर बैठा कर मेरी पूजा की है। पर न मैं देवता हूं; न मैं औरत हूं; न मैं मर्द हूं। मैं भी भगवान के हाथ का रचा हुआ एक बेजान मिट्टी का ढेर हूं। तुम्हारी दुनिया का साथी बन कर आसमानी सड़क पर उसके चारों तरफ़ घूमा करता हूं। यही मेरा काम है।

ख़फ़ा मत होना, तुम लोगों में अक़ल का अकाल है। अपनी ही परछांई देखकर तुम आप डरते हो।



प्रिंस आफ़ वेल्स [अब महाराजा सातवें यडवर्ड], महाराजा जंगबहादुर, इत्यादि ।



शंखेलामा—वज्रोली मुद्रा के साधक।

जब मुझ में ग्रहन लगता है तब क्या होता है? तुम्हारी दुनिया सूरज को अपनी आड़ में करके मेरे सामने आजाती है। इसी लिये उसकी गोल परछाईं मेरे ऊपर पड़ती है। पर तुम समझते हो कि राहु मुझे निगले जाता है। इसीसे तुम राहु को चाण्डाल, डोम या मेहतर समझकर उसके भाई बिरादरों को दान देने लगते हो! पर मैं जैसे का तैसा बना रहता हूं। मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ता। दुनिया के हट जातेही फिर भैया की रोशनी से मैं चमकने लगता हूं। भैया ही की बदौलत मैंने ऐसी सूरत पाई है।

मेरी कलाओं को घटते बढ़ते देखकर तुम लोग न जाने क्या क्या सोचा करते हो। पूनों की रात को तुम समझते हो कि तुमने मेरा सारा बदन देख लिया। पर असल में उस वक़्त तुम मेरे एक ही तरफ़ के हिस्से को देख पाते हो। दूसरे तरफ़ की मेरी सूरत शुरू से आज तक तुम लोगों की नज़र के सामने ही नहीं आई। मेरा एक तरफ़ का बदन रोज़ ब रोज़ चमकता रहता है। उस तरफ़ हर रात मेरे लिये पूनों की रात रहती है। तुम्हारी नज़रों में फ़र्क है। इसी से हर तिथि या तारीख़ को तुम्हें मेरी नई नई सूरतें दिखलाई देती हैं। अमावस को तुम मुझे नहीं देखते। पर मैं उस रात को तुम्हारे इतना पास रहता हूं कि पूनों को भी उतना पास नहीं रहता। तुम तारीफ़ करो या न करो, मैं अपना काम किया करता हूं। अमावस को रात को छिपे रहकर तुम्हारी दुनिया की जो भलाई मुझ से हो जाती है, मुझे उसी से ख़ुशी होती है।

मुझ में ख़ूबसूरती नहीं है। पर तुम मेरी ख़ूबसूरती की तारीफ़ करते करते पागल हो जाते हो। चकवा चकवी को बुलाकर मेरी हड्डियों से तुम कितना मीठा रस निचोड़ा करते हो। पर मुझमें तारीफ़ की असली चीज़ को तुम नहीं जानते। समन्दर के पानी को उबला कर मैं ज्वार भाटा पैदा करता हूं; पेड़ों को पालता हूं; आदमियों के जिस्म की बीमारियां खींच लेता हूं। और भी बहुत से काम मैं पूरा करता हूं। तलाश करो तो तुम उन्हें जान सकोगे। यों नहीं।

तुम्हारे सायन्स वाले पण्डित लोग कहते हैं कि मुझ में दुनिया के बराबर न हवा है, न बादल, और न मुझ में कोई जानदार बसते हैं। पर अपने पण्डितों से तुम ज़रा कह देना कि भगवान की अजीब कारीगरी को वे क्या जानें। तुमलोग मेरे बारे में तहक़ीक़ात करते रहो; तुम्हारी अक़ल बढ़ती रहे; धीरे धीरे और भी बहुत कुछ जानकारी तुम हासिल कर सकोगे। अक़ल की बदौलत दिन दिन तुम्हारी ग़लतियाँ दूर हो रही हैं। यह देख कर मैं बहुत ख़ुश हूं। भगवान करे तुम मुझे और भी ज़ियादह पहचानने लगो।

पार्वतीनन्दन।

पौधों की नींद।

ज्यों हम वानस्पतिक जीवन के भेदों को ढूंढते हैं, त्यों त्यों प्राणि-जीवन और वृक्ष-जीवन में अधिक अधिक समानता को देख कर हमें चकित होना पड़ता है। हम सांस लेते हैं; वृक्ष भी सांस लेते हैं। हमारे शरीर में रुधिर-सञ्चार होता है; वृक्षों में भी रस-प्रवाह होता है। परिश्रम करने के उपरान्त हम थक जाते हैं; रात होने पर पड़के सो रहते हैं। वृक्ष भी सोते हैं। दिनभर की थकावट के बाद वृक्ष सन्ध्या को एक विशेष रूप धारण कर लेते हैं। और उसी रूप में रात भर स्थित रहते हैं। यही पौधों की नींद है।

हमारे देश की स्त्रियां कहा करती हैं "भइया, संझा का पत्ता न तोड़ेउ, संझा का पेंड़ सोवत हैं"। और भारतवर्ष ही में पाश्चात्य विद्वानों को सब से पहले पौधों की नींद का पता लगा था। सन १५६७ ई० में Garcias de Horto नामक एक विद्वान ने भारतवर्ष में एक इमली के वृक्ष को

सोते हुए देखा। परंतु इस अद्भुत बात का पूरा पूरा वर्णन और निर्णय करने का यश Liunaeus नामक वृक्ष-विद्या-विशारद को ही मिला। इस विद्वान ने सब से पहले अपनी फुलवाड़ी के एक कमल में इस बात को देखा। एक दिन प्रातःकाल उस में फूल खिले हुए हुए थे। परन्तु आधी रात के समय उसमें एक भी फूल न दिखाई दिया। Liunaeus ने सोचा कि कदाचित् किसी ने उसकी वाटिका के सुन्दर पुष्पों को चुरा लिया होगा। परन्तु अधिक ध्यान देके देखने पर उसे ज्ञात हुआ कि इस चोरी का अपराधी स्वयं वह वृक्ष ही है। कुछ दिनों में इस तत्ववेत्ता ने पता लगाया कि वास्तव में रोज़ शामको इस वृक्ष की पत्तियां एक ऐसे आसन में स्थित होजाती हैं कि फूल का अन्दरी ढकन (Corolla) छिप जाता है। यह इस कमल वृक्ष के सोने का तरीक़ा है।

क्या एक कमल वृक्ष ही रात को सोता है या अन्य जाति के वृक्ष भी रात को शयन किया करते हैं? यह प्रश्न Liunaeus के चित्त में उत्पन्न हुआ। इसका निर्णय करने के लिए वह रात रात भर मशाल लिये हुए अपनी वाटिका में घूमा किया और एक एक वृक्ष को देखने में उसने बहुत समय व्यय किया। निदान उसने देखा कि अधिकतर वृक्ष रात को सोते हैं। अर्थात् एक विशेष आसन में स्थित हो जाते हैं।

दिन के अन्त में प्राणिमात्र को विश्राम करने की आवश्यकता होती है। दिन के प्रकाश के अन्तर्हित होते ही प्राणी आराम करते हैं। मनुष्यों का दिन में सोना प्रकृति-विरुद्ध कार्य है। वृक्ष दिन में नहीं सोते। या यों कहिये कि प्रकाश में नहीं सोते; रात होने पर अन्धकार छाजाने ही पर वे सोते हैं। पूर्वोक्त आसन-विशेष में स्थित होना ही उनका पैर फैलाकर नींद लेना है।

वनस्पतिवर्ग की कई जातियों के पौधे सोने के समय ऐसा रूप धारण कर लेते हैं कि उनका उस समय पहचानना मुश्किल हो जाता है। वृक्ष-निद्रा से वन का दृश्य बिलकुल बदल जाता है। बहुत से अपनी शाखाओं को तने के निकट ले आते हैं और अपने पत्तों को एक दूसरे के ऊपर रख देते हैं। उनके पत्ते ऐसे मालूम पड़ते हैं कि मानों शीत से बचने के लिये एक दूसरे से चिपट गये हों। छुई मुई जाति वाले पौधे (Sensitive plants) रात के समय ऐसा रूप धारण कर लेते हैं कि उनको देखते ही मालूम हो जाता है कि मानों वे सो रहे हों। जैसे श्रान्त मनुष्य पलकें बन्द करके निश्चल पड़ रहता है, उसी भांति ये पौधे भी अपनी छोटी छोटी शाखाओं को झुका, नन्हीं नन्हीं पत्तियों को एक दूसरे के ऊपर रख, निश्चल भाव से गहरी नींद का आनन्द लेते हैं। चकौंड़ नाम का पौधा बरसात में अधिकता से होता है। शाम होते ही उसकी पत्तियाँ एक दूसरे से चिपट जाती हैं। जिस दिन बादल बहुत होता है और सूर्य नहीं देख पड़ता उस दिन इसकी पत्तियों की तरफ़ देख कर लोग जान लेते हैं कि अब दिन डूबने को है। उष्ण देशों में यह बात और भी अधिक अद्भुतता के साथ देखी जाती है। Humboldt ने उत्तरीय अमेरिका के कोलम्बिया प्रदेशान्तर्गत मगडालेना (Magdalena) नामक नदी के तट पर देखा कि वहाँ के वृक्ष ठण्ढे देशों के वृक्षों से अधिक देर में जागते हैं। मानों उष्ण देश के वृक्ष भी उष्ण देश के मनुष्यों की भांति बड़े आलसी होते हैं। कई तरह के फूल तो इतने आलसी होते हैं कि क्या कहना! सन्ध्या होने में अभी घण्टों की देर है; परन्तु इन्होंने अभी से सोने की ठहराली। और सोयेंगे भी कितनी देर? सूरज आकाश में बहुत ऊँचा चढ़ आया। चारों ओर धूप फैलगई। तब आप ने अँगड़ाई ले कर आँख खोली। वाह री नींद! भला सबसे पहले सोये थे तो जागते भी सब से आगे!

बहुत से पुष्प-वृक्ष सन्ध्या ही को निद्रादेवी की गोद में आराम करने के लिए पड़ रहते हैं।

यदि हम सन्ध्या के समय एक ऐसे मैदान को देखें कि जिसमें इस जाति के फूल बहुतायत से हों तो वह पहचानने में ही न आवैगा। ठीक दोपहर के समय वह मैदान बिल्लौरी पखुरियों से भरा हुआ एक सब्ज़ बाज़ार था। बहुत सी पीली ग्रैार नीली आँखें हमें ताक रहीं थीं। परन्तु सन्ध्या को वे आंखें बन्द हो गईं। बिल्लौरी पखुरियाँ अदृश्य हो गईं। उस मैदान का जीवन दृश्य अन्तर्हित हो गया। सब कुछ निर्जीव मालूम होने लगा। उसके सारे फूल सो गये।

बहुतों ने इस नींद का कारण दिन ग्रैार रात की उष्णता का फ़र्क़ ही विचारा है। दिन की अधिक उष्णता के कारण पेड़ जागते रहते हैं; परन्तु रात में कम उष्णता के कारण वे शिथिल होजाते हैं—सो रहते हैं। परन्तु जब ग्रीन हाउसेज़ (green houses) में भी, जहाँ कि रात ग्रैार दिन दोनों ही में उष्णता बराबर रक्खी जाती है, पौधे सोते हुए देखे गये तो उनका यह विचार असत्य प्रमाणित हुआ; ग्रैार वानस्पतिक नींद का कोई ग्रैार ही कारण ढूंढ़ना पड़ा।

De Candolle नामक तत्ववेत्ता ने कई अद्भुत तजरुबों से प्रमाणित कर दिया कि पैाधों की नींद का वास्तविक कारण प्रकाश का अभाव ही है। इस वृक्ष-विद्या-विशारद ने छुई मुई के पैाधों पर रात के समय बड़ा तीव्र प्रकाश डालकर उन्हें सोते से जगा दिया। ग्रैार दिन में घोर अन्धकाराच्छन्न स्थान में ले जाकर उन्हें उसने सुला दिया। यह पैाधे बड़ी सुगमता से धोखे में कृत्रिम अन्धकार को रात समझ कर दिन भर सोया किये। ग्रैार छः लैम्पों के तीव्र प्रकाश को सूरज का उजाला समझ रात भर वे जागा किये। अयन-रेखान्तर्गत देशों ही में विशेष कर पैाधों की यह नींद देखने में आती है। ग्रैार सबसे अधिक छुई मुई जाति वाले वृक्षों (sensitive plants) में नींद की अधिकता पाई जाती है।

सूर्यनारायण दीक्षित।

जापान की महारानी हरो-को।

जापान आजकल प्रत्येक भारतवासी हीका नहीं किंतु सारी दुनिया के निवासियों का चित्त अपनी ग्रोर आकर्षित कर रहा है। जितनी उन्नति को ग्रैार देश वाले १००० वर्ष में भी न कर सकते उतनी जापान ने सिर्फ ३० वर्ष में कर दिखाई। जिस देश में यह शक्ति है उसकी महारानी का संक्षिप्त चरित सुनना किसे न अभीष्ट होगा। महारानी हरो-को के चरित में इस देश की सिर्फ स्त्रियों ही को नहीं किन्तु पुरुषों को भी बहुत सी बोध-प्रद बातें मिल सकती हैं।

महारानी हरो-को का जन्म १८५० ई० में हुआ। उमर में अपने स्वामी से वे २ वर्ष बड़ी हैं। जापान में ५ ख़ानदान ऐसे हैं जिनका नम्बर सिर्फ़ महाराजा मिकाडो के ख़ानदान से ही नीचा है। अर्थात् जापान में वह दूसरे दरजे का ख़ानदान है। इन्हीं ५ ख़ानदानों में से महाराज मिकाडो अपनी महारानी चुनते हैं। जापान की वर्त्तमान महारानी कीयाटो में बहुत दिनों तक रहीं हैं। महारानी को जैसी शिक्षा दरकार होती है उसे उन्होंने वहीं एकांत में रहकर पाया है। उन्नीस वर्ष की उमर में उनका बिवाह महाराजा मत्सहितो के साथ हुआ।

जापान में नए ढङ्ग की जितनी स्त्रियां हैं उनमें महारानी सबसे ऊँचा दरजा रखती हैं। उनके कपड़े लत्ते पेरिस या लण्डन में तैयार होते हैं। वे उन्हें बड़ी ख़ूबी से पहनती हैं। उनको देखकर मालूम होता है कि वे योरोप की बहुत बड़ी शैाक़ीन स्त्रियों से भी अधिक शैाक़ीन हैं। महारानी ख़ूब-सूरत नहीं है, पर उनके चेहरे से बेहद लावण्य टपकता है।

हरो-को को अपने देश से बहुत प्रीति है। अपनी प्रजा के लिए वे सब कुछ करने को तैयार रहती हैं। अपनी प्रजा की आशा, अभिलाषा ग्रैार

भीति को वे सर्वथा अपनीही आशा, अभिलाषा और भीति समझती हैं। प्रजा भी उनको बहुत प्यार करती है। वे जापान की वर्त्तमान महारानी हैं, और भावी महाराजाधिराज की माता हैं। इसीसे उनपर प्रजा का इतना अधिक प्रेम और पूज्य भाव है। इस प्रीति का एक और भी कारण है। जापान में पहले किसी समय एक बहुत ही दयामयी महारानी हो गई हैं। उनको लोग बड़े स्नेह और भक्ति भाव से पूजते थे। इस समय बूढ़े बूढ़े जापानियों का यह ख़याल है कि वही दयालु महारानी हरो-को के रूप में फिर पैदा हुई हैं।

महाराजा मिकाडो का हरो-को पर बहुत प्रेम है। तथापि हरो-को की हृदयवाटिका लहराती हुई हालत में नहीं है। क्योंकि यद्यपि वे मिकाडो की मुख्य रानी हैं, तथापि जापाननरेश के और भी ११ रानियां हैं। पर वे जिन अमीरों के घर की हैं उनका ख़ानदान हरो-को के माता पिता के ख़ानदान से घट कर है। वे मुकुट नहीं धारण कर सकतीं और महारानी के समान साज सामान भी नहीं रख सकतीं। परन्तु हां, इनके संतान भी सिंहासन के वारिस हो सकते हैं। जापान के युवराज इन ११ रानियों में से ही एक के ज्येष्ठ पुत्र हैं। जब महारानी के पुत्र होने की आशा न रही तब यही ज्येष्ठ पुत्र युवराज मान लिया गया। महारानी हरो-को ने तब से इस राजकुमार को अपनाही राजकुमार समझ लिया है। उस पर वे हमेशा माता का सा स्नेह रखती हैं। भविष्य में महाराजा होने के लिए जो जो बातें दरकार हैं, उनके लिये, वे तन, मन और धन से परिश्रम भी करती हैं।

महारानी आतिथ्य करने में बहुत बढ़ी चढ़ी हैं। वे हर साल एक भोज देती हैं। वह देखने के लायक़ होता है। उस समय वे बहुमूल्य और सुन्दर वस्त्रालंकार पहनती हैं और जो जो काम गृहिणी को करने चाहिएं उन्हें वे बड़े स्नेह से करती हैं। आज कल जापान की राजधानी में एक भी जलसा नहीं होता, क्योंकि घायल सिपाहियों के दुःखों को दूर करने ही में महारानी हरो-को का सारा समय ख़र्च होता है। घायलों की सेवा शुश्रूषा करने के लिए जापान में एक समाज है। हरो-को उसकी अध्यक्ष हैं। चीन से लड़ाई होने के पहिले ही हरो-को ने इस परोपकारी समाज की स्थापना की थी। तभी से वे उसकी उन्नति के लिए बराबर परिश्रम कर रही हैं। उन्होंने प्रण किया है कि जब तक रूस-जापान का युद्ध होता रहेगा, तब तक न वह किसी खेल तमाशे के लिए एक पाई ख़र्च करेंगी, और न जापान के दरबार का कोई और आदमी ही करने पायेगा। ऐसे खेल तमाशों में जो ख़र्च होता था वह उन्होंने घायल जापानी सिपाहियों के ही काम में लगाने का निश्चय कर लिया है।

महारानी हरो-को का यह अनुग्रह, यह देश प्रेम, यह स्वार्थत्याग हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुषों के अनुकरण करने योग्य है। रूस के साथ लड़ने में जापान को इस समय जो हानि हो रही है, उससे कई गुना हानि प्लेग और अकाल हिन्दुस्तान में कर रहे हैं। बिना अन्न के हज़ारों आदमी भीख मांग कर अपना गुज़ारा करते हैं। किसानों की ऐसी बुरी दशा है कि उसे देख कर पत्थर का कलेजा भी द्रवित हो जाता है। पर इसका ज़रा भी विचार न करके लोग हरसाल लाखों रुपये नाच तमाशे में ख़र्च करते हैं। यदि वे परम दयामयी जापान की इस महारानी से थोड़ा भी सबक़ सीखें तो देश का बहुत कुछ दुख दरिद्र दूर हो जाय।

शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित।

नैपाल।

नैपाल की गिनती उन राज्यों में है जो स्वाधीन गिने जाते हैं। पर जैसे हैदराबाद, मैसूर और काश्मीर इत्यादि राज्यों में अँगरेज़ों का रेसीडेण्ट रहता है वैसे ही नैपाल में भी रहता है। यह देश कोई ५०० मील

लम्बा और १२० मील चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल कोई ६०,००० वर्ग मील है। हिमालय के दक्षिणी भाग की दो चोटियों के बीच कोई १५ मील लम्बी और उतनीही चौड़ी समतल जगह है। नैपालवाले उसी को नैपाल कहते हैं। पर और देशवाले गोर्खालोगों के सारे देश को नैपाल कहते हैं। नैपाल का कुछ ही हिस्सा ऐसा है जहां विदेशी जाने पाते हैं। नैपाली लोग विदेशियों को अपने देश में बे रोक टोक सब कहीं नहीं जाने देते। यह सिद्धान्त योरपवालों को पसन्द नहीं, क्योंकि इसके कारण, झगड़े की जड़, पादरी साहब, का प्रवेश वहां नहीं होता।

नैपाल बिलकुल पहाड़ी देश है। हिमालय की सबसे ऊंची चोटी अवरिष्ट (२९,००२ फुट, नैपाल ही की सीमा के भीतर है। इसका नैपाली नाम दूधगङ्गा है। नैपाल की हद का उत्तरी हिस्सा ऐसा है जहां बहुत करके साल भर बर्फ़ जमा रहता है। वह कभी नहीं गलता; थोड़ा बहुत बनाही रहता है। नैपाल की राजधानी काठमाण्डू में है। वह समुद्र की सतह से कोई ४,००० फुट की उँचाई पर है। नैपाल का दक्षिणी हिस्सा हिन्दुस्तान से मिला हुआ है। उसे तराई कहते हैं। वहां की ज़मीन नीची है। उसमें सघन जंगल हैं और साल, शीशम इत्यादि बहुत पैदा होता है। जहां जंगल नहीं है वहां खेती होती है। दक्षिणी हिमालय की नन्दादेवी, धवलगिरि, दयाभङ्ग और काञ्चनगङ्गा आदि चोटियां भी नैपालही के अन्तर्गत हैं।

घाघरा, कोसी और गण्डक आदि नदियां नैपाल से होकर बहती हैं। ये नदियां बहुत बड़ी हैं। इनके बीच का सारा पहाड़ी देश नैपाल के राज्य में शामिल है। इनमें से एक एक नदी में सात सात आठ आठ नदियां और आकर गिरती हैं। उनमें काली, श्वेतगङ्गा, राप्ती, नारायणी और दूध-कोसी मुख्य हैं। नैपाल में पहाड़ों की भी कमी नहीं है और नदियों की भी नहीं। पहाड़ों की तो बात ही क्या? सारा नैपालही पर्वतमय है। पर नदियां भी बीस पच्चीस से कम नहीं हैं।

नैपाल की आबोहवा एक सी नहीं है। जो जगह जितनी ऊंची है उसकी आबोहवा उतनीही अधिक ठण्ढी है। नैपाल के तीन भाग किये जा सकते हैं। उत्तरी, दक्षिणी और बीच का। मैदान की ज़मीन से उत्तरी हिस्सा १०,००० से २९,००० फुट तक ऊंचा है और दक्षिणी हिस्सा सिर्फ ४,००० फुट तक। पहाड़ी ज़मीन जिसमें थोड़ी बहुत खेती होती है, साल के जंगल और तराई इसी दक्षिणी हिस्से में शामिल हैं। बीच का हिस्सा मैदान से ४,००० फुट से लेकर १०,००० फुट तक ऊंचा है। हर हज़ार फुट की उंचाई पर कोई तीन अंश सरदी अधिक बढ़ती है। पर पश्चिम की तरफ़ का देश कम सर्द है। वहां पानी भी कम बरसता है; क्योंकि बादल ऊंचे ऊंचे पहाड़ों को पार नहीं कर सकते; इसी तरफ़ रह जाते हैं।

ख़ास नैपाल, अर्थात् वह भाग जो पहाड़ों के बीच दरी के रूप में है, बहुत तर है। इसी भाग में काठमाण्डू है। यहां की ज़मीन अत्यन्त उर्वरा है। यहां धान ख़ूब होता है। जो ज़मीन कुछ ऊंची है उसमें गेहूं होता है। पहाड़ों के पास की ज़मीन सबसे अच्छी है। वहां धान भी होता है और गेहूं भी। कहीं कहीं एक साल में दो दो तीन तीन फसलें होती हैं।

नैपाल में अकतूबर से मार्च तक सर्दी रहती है और जनवरी, फ़रवरी में सख़्त जाड़ा पड़ता है। अप्रैल से सितम्बर तक की आबोहवा तर रहती है; गरमी अधिक नहीं पड़ती। मार्च से मई और सितम्बर से दिसम्बर तक का मौसम बहुत अच्छा होता है। जून, जुलाई और अगस्त में वर्षा होती है।

नैपाल में कई जाति के आदमी बसते हैं। उनमें से भोटिया, मगर, गुरूंग, नेवार, किराती लेपचा और लिम्बू मुख्य हैं। भूटान की तरफ़ बहुत ऊंची जगहों में भोटिया लोग रहते हैं। वे

तिबत की भाषा बोलते हैं। उनके कपड़े लत्ते, चाल ढाल, रीति रवाज और शकल सूरत तिबतवालों से मिलती है। नैपाल के बीच में, पश्चिम की तरफ़, कम ऊंची पहाड़ियों पर मगर और अधिक ऊंची पहाड़ियों पर गुरूंग जाति के लोग रहते हैं। नेवार लोग ख़ास नैपाल की दरी में, और किराती और लिम्बू नैपाल के पूर्व, रहते हैं। लेपचा जाति के लोग सिकम के पास की पहाड़ियों पर रहते हैं। इन सबकी गिनती मंगोलियन शाखा के आदमियों में हैं, अर्थात् मंगोलिया में रहनेवालों की शकल सूरत जैसी होती है उससे इन लोगों की शकल सूरत मिलती है। इनके सिवा नैपाल में एक और जाति के आदमी रहते हैं। वे पार्वती या पर्वतिया कहलाते हैं। तेरहवीं सदी में हिन्दुस्तान से जो लोग भग कर नैपाल चले गये थे, उनके और पहाड़ी स्त्रियों के समागम से इन लोगों की उत्पत्ति हुई है। मगर, गुरूंग और पर्वतियां जातिवालों के समूह का नाम गोर्खा या गोर्खाली है। बंगाल के भूतपूर्व लफ्टिनेण्ट गवर्नर, और बम्बई के गवर्नर, सर रिचर्ड टेम्पल का यह मत है। उन्हों ने एक किताब लिखी है उसी में आपने अपना यह मत प्रकाशित किया है। नैपाल में काठमाण्डू से ४० मील पश्चिम की तरफ़ गोर्खा नाम का एक शहर है। उसीके नाम पर गोर्खा लोगों का नाम पड़ा है। नैपाल की दरी में जो लोग रहते हैं उनमें नेवार जातिवालों की संख्या सब से अधिक है। नैपाल में पहले इन्हीं लोगों का प्रभुत्व था। ७६८ ईसवी के लगभग गोर्खा लोगों ने नैपाल में अपना राज्य स्थापित किया। चेपांग, कुसुंदा और अवालिया लोग भी नैपाल के भीतरी जंगलों और तराइयों में रहते हैं। ये लोग यहां के आदिम निवासी हैं और हिन्दुस्तान के गोंड़, भील और सौंताल आदि की तरह असभ्य और जंगली हैं।

पहले नैपालीयों में गोत्र या कुल का भेद न था। पर जब से हिन्दुस्तानियों ने नैपाल में क़दम रक्खा और धीरे धीरे पर्वतिया जाति की उत्पत्ति हुई, तब से यह बात भी वहां होगई। पर्वतिया लोगों में थापा, बिसनायत, भण्डारी, अधिकारी, कारकी और दानी इत्यादि कुलभेद प्रचलित हैं। इन लोगों के सम्पर्क से मगर लोगों में भी राना और थापा आदि भेद हो गये हैं। पर गुरूंगजाति में इस भेदभाव का अभी तक प्रचार नहीं हुआ।

गोर्खा लोग पर्वतिया भाषा बोलते हैं। वह संस्कृत से निकली है। जब से हिन्दुस्तानियों का नैपाल में प्रवेश हुआ, तभी से इस भाषा की नीव वहां पड़ी। नैपाल के पुराने प्रभु नेवार लोगों की भाषा और ही है। उसका नाम नेवारी है। और और जातिवालों में से कुछ तो तिबत की भाषा बोलते हैं और कुछ सिकम और भुटान की।

गोर्खा लोग हिन्दूधर्म्म के अनुयायी हैं। नेवार लोगों में से कुछ हिन्दू हैं और कुछ बौद्ध। जो हिन्दू हैं वे शैवमार्गी नेवार कहलाते हैं और जो बौद्ध हैं वे बौद्धमार्गी नेवार। पर सच पूछिये तो बौद्ध मार्गी नेवारों का ठीक ठीक कोई धर्म्म हो नहीं है। वे हिन्दुओं के देवी देवताओं को भी पूजते हैं और बुद्ध को भी पूजते हैं। लिम्बू, किराती, भोटिया और लेपचा भी बौद्ध हैं। नैपाल में व्यापार, कारीगरी और कृषि प्रायः नेवार लोगों ही के हाथ में है।

नैपाल में साधारण आदमियों का भोजन चावल और तरकारी है। जो समर्थ हैं वे मांस भी खाते हैं। हिरन और जंगली सूअर भी लोग खाते हैं। नेवार और गुरुंग जाति के आदमी भैंस तक खाते हैं। इस देश की तरह नैपाल में भी लोग खूब बहुविवाह करते हैं। जो धनी हैं उनको एक से अधिक स्त्रियां रखने का अकसर शौक होता है। पर विधवा-विवाह का निषेध है! नैपाल में सती की चाल अभी तक बनी हुई है। जब नैपाल के प्रसिद्ध मंत्री जङ्ग-बहादुर की मृत्यु हुई तब उनकी रानी उनके मृत शरीर के साथ सती हो गईं। गोर्खा लोगों में व्यभिचार बहुत निषिद्ध है। इसके लिये स्त्री और पुरुष दोनों को कठिन दण्ड दिया जाता है। पर नेवार लोगों में विवाह-बन्धन और व्यभि-

चार आदि का विचार उतना कड़ा नहीं है। किसी किसी का मत है कि नेवार जाति की स्त्रियां कभी विधवा ही नहीं होतीं।

नैपाल की फ़ौज में पर्वतिया, मगर और गुरु ंग लोग ही अधिकता से भरती किये जाते हैं। पर इस देश की अंगरेज़ी गोर्खा पलटनों में और जाति के आदमी भी ले लिये जाते हैं। वे सब गोर्खा कहलाते हैं। गत एप्रिल में जो भूकम्प हुआ था उसने धर्म्मशाला में इसी गोर्खा जाति की एक अंगरेज़ी पलटन के डेढ़ दो सौ आदमियों का संहार कर डाला था। ये लोग बड़े बहादुर होते हैं। इनकी बहादुरी पर गवर्नमेण्ट बहुत ख़ुश है। इसी से लार्ड किचनर ने बहुत सा चन्दा इकट्ठा करके मृत गोर्खा लोगों के कुटुम्बियों की सहायता की है जनरल सेल हिल बहुत दिनों तक एक गोर्खा पलटन में रहे हैं। वे कहते हैं कि "गोर्खा लोग बड़े बहादुर, श्रम-सहिष्णु, आज्ञाकारी, स्वच्छ-हृदय, स्वाधीनचेता और आत्मावलम्बी होते हैं। अपने मुल्क में वे विदेशियों को नहीं घुसने देते; उनसे द्वेष करते हैं। वे अपनी स्त्रियों को बहुत अच्छी तरह रखते हैं। इसीसे स्त्रियां भी उनकी ख़ूब सेवा शुश्रूषा करती हैं। पर ये लोग ज़रा कुन्दज़ेहन होते हैं और क़वायद परेड सीखने में अधिक दिन लगाते हैं। जब ये फ़ौज में भरती होते हैं तब बहुत मैले रहते हैं। इसलिये पहले इनको सफ़ाई पर सबक़ देना पड़ता है। जुआ खेलने की इनमें बुरी आदत होती है। पहाड़ी मुल्क में पैदल सिपाहियों के काम में कोई इनकी बराबरी नहीं कर सकता। इनका स्वदेशी हथियार कुकड़ी है।

नैपाल में ग़ुलामी की चाल अभी तक जारी है। वहां प्रायः सब समर्थ आदमियों के यहां ग़ुलाम रहते हैं। ग़ुलामों की क़ीमत कोई १५० रुपये तक होती है। स्त्रियां भी ग़ुलाम का काम करती हैं। उनकी क़ीमत कुछ अधिक पड़ती है। सुनते हैं ग़ुलाम स्त्रियों का चाल चलन अच्छा नहीं होता। ग़ुलामों के मालिक अपने ग़ुलामों के साथ अच्छा बर्ताव करते हैं।

यहां प्रजा की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। न कोई अच्छे स्कूल हैं और न कालेज। धनवान आदमी अपने लड़कों को घरही पर शिक्षक रख कर पढ़ाते हैं। नैपाल से लड़के इस देश में भी विद्याध्ययन के लिए अकसर आते हैं। नैपाल में भाषासाहित्य का प्रायः अभाव ही है। पर संस्कृत के अनन्त अलभ्य ग्रन्थ वहां विद्यमान हैं। काठमाण्डू में जो राजकीय पुस्तकालय है उसकी महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने बहुत प्रशंसा की है। कई विद्वान अंगरेज़ और हिन्दुस्तानी महीनों उसकी पुस्तकों की सूची बनाते रहे; परन्तु पूरी नहीं बना पाये। जो सूची आज तक प्रकाशित हुई है उसमें हज़ारों ग्रन्थ ऐसे हैं जो और कहीं प्रायः अलभ्य हैं। उनमें से अनेक ऐसे हैं जिनके नाम तक नहीं सुने गये थे। कितने ही ग्रन्थ युद्ध-विद्या, पशु-चिकित्सा-विद्या और गृह-निर्म्माण-विद्या पर वहां रक्खे हैं।

नैपाल की मनुष्यसंख्या ठीक ठीक नहीं मालूम। नैपालवाले कहते हैं कि उनके देश में बावन लाख आदमी रहते हैं। पर विदेशी यात्रियों का अनुमान है कि वहां की आबादी इससे कम है।

नैपाल में चार मशहूर शहर हैं—काठमाण्डू, पाटन, कीर्तिपुर और भटगाँव।

काठमाण्डू बागमती और विष्णुमती नदियों के सङ्गम पर बसा है। उसकी आबादी ५०,००० के क़रीब है। मकान कई मंज़िले हैं। महाराजाधिराज का राजभवन शहर के बीच में है। यहां एक भी अच्छी सड़क नहीं। शहर में सफ़ाई कम रहती है। गली गली में मन्दिर हैं। एक साहब ने लिखा है कि काठमाण्डू में आदमी कम हैं, मन्दिर अधिक! मन्दिरों में बतख़, बकरों और भैंसों का बलिदान होता है। यहां एक मन्दिर बहुत मशहूर है। उसका नाम तलेजू है। एक बाज़ार भी यहां

बहुत अच्छा है। वह काठमाण्डू-टोल कहलाता है। महाकाल का पुराना मन्दिर और रानी-पोखरी नाम का तालाब भी यहां मशहूर हैं।

पाटन का दूसरा नाम ललितपाटन है। यह काठमाण्डू से दोही तीन मील दूर है। यह बहुत पुराना शहर है। इसकी आबादी ६०,००० के क़रीब है। यह शहर पहले बहुत अच्छी हालत में था। पर जब गोर्खा लोगों ने नैपाल का राज्यसूत्र नेवार लोगों से छीना तब उन्होंने इस शहर के छिन्न भिन्न कर डाला। इसमें भी अनेक मन्दिर हैं। यहां बौद्ध लोगों के चैतन्य और विहार भी बहुत से हैं। मत्स्येन्द्रनाथ और महाबुध के बहुत पुराने स्थान यहां हैं। यहां का दरबार नामक प्रासाद बहुत ही अच्छी इमारत है।

कीर्त्तिपुर एक छोटा सा क़सबा है। इसमें सिर्फ़ पांच छ हज़ार आदमी रहते हैं। गोर्खा लोगों ने राज्यक्रान्ति के समय इसे बे-तरह विध्वस्त कर डाला था। तब से यह बुरी दशा में है। इसमें भैरव और गणेश के मन्दिर अवलोकनीय हैं।

भटगांव काठमाण्डू से ७ मील है। इसकी आबादी कोई पचास हज़ार के क़रीब है। नैपाल में इस शहर की बस्ती सबसे अधिक घनी है। देखने में भी यह बहुत सुन्दर है। और साफ़ भी यह अधिक है। भटगांव का दरबार नामक प्रासाद पहले बहुत बड़ा था। अब भी वह देखने लायक़ है। उसमें एक विशाल फाटक है। उसे लोग "सोने का फाटक" कहते हैं। यह फाटक बहुत प्रसिद्ध है। इसके शिल्पकार्य की फ़रगुसन साहब ने बड़ी प्रशंसा की है। भवानी, भैरव और गणेश के यहां कई मंदिर हैं।

नैपाल में गोर्खा भी एक मशहूर शहर है। पर अब उसकी उतरती कला है। जिस समय गोर्खा लागों का वह प्रधान शहर था उस समय उसकी शोभा कुछ औरही थी। उसमें कोई इमारत देखने लायक़ नहीं है। पर अब भी उसमें कोई दस हज़ार आदमी बसते हैं।

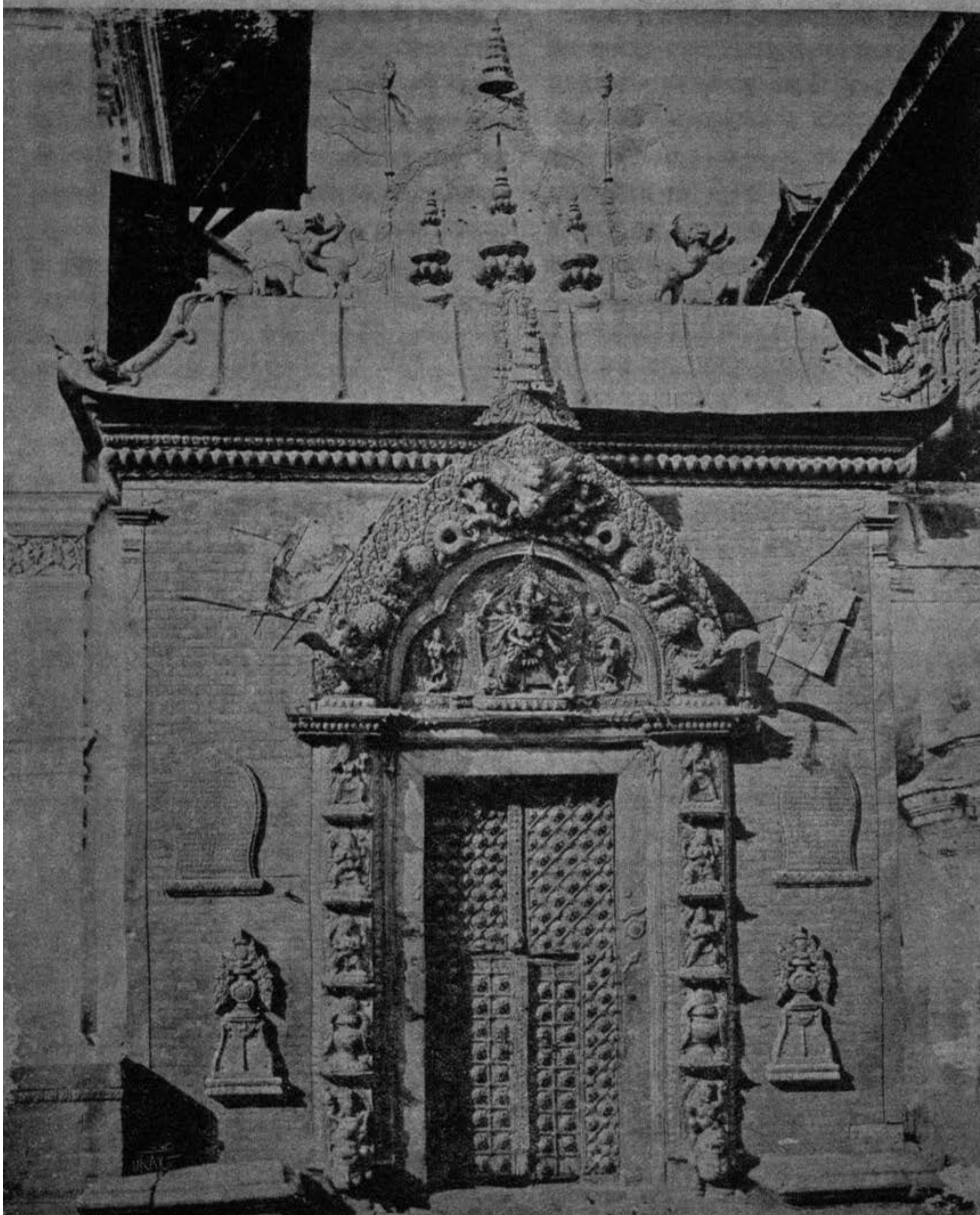
काठमाण्डू से तीन मील पर पशुपतिनगर नाम का एक क़सबा है। यह बागमती नदी के किनारे बसा हुआ है। यहां पशुपतिनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर बहुत बड़ा है। उसके पास कोई योरपनिवासी नहीं जाने पाता। पशुपतिनगर नैपालियों को काशीपुरी है। मरने के समय लोग वहीं रहने जाते हैं।

नैपाल की सालाना आमदनी एक करोड़ रुपये हैं। पर सर रिचर्ड टेम्पल साहब के इस पर विश्वास नहीं है। आप कहते हैं कि इतनी आमदनी नहीं है; यह बढ़ाकर बतलाई गई है।

नैपाल में २०,००० फ़ौज हमेशा तैयार रहती है। वह कई पलटनों में बँटी हुई है। पर नैपाल एक ऐसा देश है जहां के सभी मनुष्य हथियार उठाना और लड़ना जानते हैं। उन सब के नियत समय तक युद्धविद्या सिखलाई जाती है और ज़रूरत पड़ने पर वे सब अपने देश की रक्षा के लिये लड़ाई पर भेजे जा सकते हैं। ज़रूरत के समय नैपाल कोई सत्तर अस्सी हज़ार फ़ौज इकट्ठा कर सकता है। फ़ौज के अंगरेज़ी तरह की क़वायद सिखलाई जाती है। सब के एक विशेष प्रकार की वरदी पहनना पड़ता है। सिपाही सिर पर फेँटा बांधते हैं। अफ़सरों के फेँटों पर कलँगी, जवाहिरात और चिड़ियों के सुन्दर सुन्दर पंख लगे रहते हैं। फ़ौज के बड़े अफ़सरों की पोशाक औरही तरह की होती है। प्रिंस जगत-जङ्ग राना बहादुर के चित्र में उसे देखिए। आप नैपाल के पश्चिमप्रान्त के कमाण्डिङ्ग जेनरल थे। शायद आप चित्र उतरवाते समय पूरी फ़ौजी पोशाक में नहीं थे; क्योंकि चित्र में आपका सिर नङ्गा है। नैपाल में मेगज़ीन, सिलहख़ाने और दो तीन तरह के तोपख़ाने भी हैं। कुछ फ़ौज के पास अंगरेज़ी और कुछ के पास देशी हथियार हैं। पर कुकड़ी हर सैनिक के पास रहती है। यनफील्ड राइफ़ल के नमूने की बन्दूक़ें भी नैपाल में बनती हैं। नैपाली फ़ौज क़वायद परेड में बहुत होशियार है। उसकी बहादुरी की तो



ललितपाटन में भीमसेन का मन्दिर।



भाटगांव [भक्तपुर] के महल का सुनहरा फाटक।

बात ही क्या ? गोर्खा सिपाही संसार में प्रसिद्ध हैं। नैपाल में रिसाला अच्छा नहीं। इस बात की वहाँ कमी है। पर हाथी अनेक हैं। दूसरे सभ्य देशों ने नये नये शस्त्र बनाने और युद्धविद्या में उन्नति करने के इरादे से नये नये आविष्कारों की सृष्टि की है। पर इन बातों में नैपाल बहुत पीछे है। अतएव योरप के किसी सभ्य देश की सेना के सामने नैपाल की सेना अधिक देर तक नहीं ठहर सकती। सर टेम्पल अपनी किताब के पढ़नेवालों से कहते हैं कि ये बातें याद रखने लायक़ हैं।

नैपाल में एक अंगरेज़ी दूत रहता है। उसे रेज़िडेण्ट कहते हैं। उसी की मारफ़त नैपाल राज्य और हिन्दुस्तान की गवर्नमेण्ट में, आवश्यकतानुसार, लिखा पढ़ी होती है। अंगरेज़ी बनिज व्यापार का वही रक्षक है। रेज़िडेण्ट साहब का वहाँ अच्छा रोब है। उनके ताज़ीम देने के लिए नैपाल के महाराजाधिराज तक अब उठ खड़े होने लगे हैं। गत एप्रिल में एक दरबार हुआ था। उसमें नैपाल नरेश ने अपने आसन से उतर कर रेज़िडेण्ट की अभ्यर्थना की थी। नैपाल-नरेश महाराधिराज कहलाते हैं और उनके मन्त्री महाराज। वहाँ मन्त्रीही राज्य के कर्ता, हर्ता और विधाता हैं।

नैपाल का राज्य बहुत पुराना है। वहाँ कलियुग के भी पहले जो राजा हुए हैं उनका पता नैपाली पुस्तकों में लगता है। पहले नैपाल में नेवार जाति की प्रभुता थी और नैपाल की दरी में इसी जाति के चार छोटे छोटे राजा राज्य करते थे। उनकी राजधानियाँ काठमाण्डू, पाटन, कीर्तिपुर और भटगांव में थीं। भटगांव के छोड़ कर ये सब शहर एक दूसरे से सिर्फ़ चार चार पांच पाँच मील के फ़ासले पर हैं। सिर्फ़ भटगांव काठमाण्डू से ७ मील है। तेरहवीं सदी में मुसल्मानों के अत्याचार से तङ्ग आकर उदयपुर के राजघराने के कुछ क्षत्रिय कमाऊं की तरफ़ चले गये। उनके साथ और भी कितने ही क्षत्रिय सेवक और सहचर की भांति गये। कोई तीन सौ बरस तक उनलोगों की सन्तति वहां रहती रही और धीरे धीरे नैपाल की तरफ़ बढ़ती रही। सोलहवीं सदी में द्रव्यशाह नामक एक पुरुष विशेष प्रतापी हुआ। उसने गोर्खा नगर के उसके राजा से छीन लिया और आप वहां का राजा हो गया। तभी से गोर्खा राजाओं के राज्य का सूत्रपात हुआ। अठारवीं सदी के उतरार्द्ध में पृथ्वीनारायण सिंह को गोर्खा की गद्दी मिली। कुछ दिन बाद पाटन, काठमाण्डू और भटगांव के नेवार राजाओं में परस्पर विरोध पैदा हुआ। इससे भटगांव के राजा रंजीतमल ने पृथ्वीनारायणशाह से मदद मांगी। इस मदद का यह फल हुआ कि तीन चार वर्ष में पृथ्वीनारायणसिंह ने युद्ध करके, कुटिल नीति से काम लेकर, और शत्रुओं में परस्पर द्वेषभाव उत्पन्न कराके, नैपाल के चारो राज्यों को उद्ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार निष्कण्टक होकर आपने नैपाल का प्रभुत्व अपने ऊपर लिया और गोर्खा छोड़कर काठमाण्डू के अपनी राजधानी बनाया। तब से नेवार जाति की प्रभुता की समाप्ति हो गई, और गोर्खा लोग नैपाल के राजा हुए। इन्हीं गोर्खाओं के वंशज अब तक वहाँ राज कर रहे हैं। १७६८ ईसवी में पृथ्वीनारायण सिंह को नैपाल की गद्दी मिली। उनसे १८४७ ईसवी तक इतने राजा नैपाल में हुए हैं—पृथ्वीनारायणशाह, प्रतापसिंहशाह, रणबहादुरशाह, गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह, राजेन्द्रविक्रमशाह और सुरेन्द्रविक्रमशाह।

पृथ्वीनारायणशाह ने धीरे धीरे किराती और लिम्बू लोगों का भी राज्य छीन लिया और रणबहादुरशाह ने नैपाली राज्य के कमाऊं तक बढ़ाया। १७९२ ईसवी में नैपालियों ने तिबत पर चढ़ाई की, पर चीन वालों ने उन्हें वहां से भगा दिया। इस चढ़ाई में उन्हें बहुत हानि उठानी पड़ी और अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ा। तभी से नैपाल वाले चीन के कर देने लगे। यह कर उन्हें अब तक देना पड़ता है। उस समय तिबत वालों ने भी अंगरेज़ों से मदद मांगी थी और

नैपाल वालों ने भी; पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मदद नहीं दी। यदि देती तो इस समय नैपाल और तिब्बत की हालत और की औरही हो गई होती। नैपाल की राजगद्दी के कारण अनेक बार मार काट हुई है। सच पूछिये तो मन्त्री ही वहाँ का राजा है। इस लिए मंत्री होने के लिए अनेक ख़ून ख़राबियां हुई हैं और कितनेही लोगों को देश छोड़कर हिन्दुस्तान में भग आना पड़ा है।

गीर्वाणयुद्धविक्रम-शाह के समय में गोर्खा लोगों ने फिर नैपाल की सीमा को बढ़ाना आरम्भ किया। पश्चिम में वे काँगड़ा तक पहुंच गये और पूर्व में सिक्कम तक। उन्होंने अंगरेज़ी राज्य पर भी आक्रमण किया। इसका फल यह हुआ कि १८१४ ईसवी में नैपाल के साथ अंगरेज़ों का युद्ध ठन गया। इस युद्ध में पहले अंगरेज़ों को बहुत तकलीफ़ैं उठानी पड़ीं। उनकी सेना का भी बहुत नाश हुआ और उनके कई बड़े बड़े अफ़सर भी मारे गये। पर पीछे से उनको कामयाबी हुई और अंगरेज़ों का जितना देश नैपालियों ने जीता था उसमें से बहुत सा उन्होंने लौटा दिया। नैपाल के साथ अंगरेज़ों की पहले दो तीन सन्धियां हो चुकी थीं। पर वे नाममात्रही के लिए थीं। जब नैपाल के साथ अंगरेज़ों की लड़ाई हुई तब नैपालियों को अंगरेज़ों का बल विक्रम अच्छी तरह मालूम हो गया। तब, १८१६ ई० में, चौथी बार सन्धि हुई। इस सन्धि का नाम सिगौली की सन्धि है। तब से अंगरेज़ी गवर्नमेण्ट की तरफ़ से एक रेज़िडेण्ट मुस्तक़िल तौर पर काठमाण्डू में रहने लगा। इस समय नैपाल-नरेश के मंत्री जेनरल भीमसेन थापा थे। इन्होंने २५ वर्ष तक काम किया। १८३७ ई० में इन पर यह अपराध लगाया गया कि इन्होंने राजा के एक छोटे बच्चे को विष दिया। इस लिए ये क़ैद किये गये और क़ैदही में इन्होंने अपना आत्मघात किया। सुनते हैं इनके मृतक शरीर की बड़ी दुर्दशा की गई थी।

भीमसेन थापा के बाद काला पाण्डे को नैपालनरेश का मंत्रित्व मिला। इनका राज्यप्रबन्ध अच्छा न था। १८४३ ईसवी में इनको मातबर-सिंह नामक एक योद्धा ने मार डाला और आप मन्त्री हो गया। परन्तु दोही वर्ष में इनका भी काम तमाम कर दिया गया। ये राजा से मिलने गये थे। वहीं इन पर किसी ने गोली चलाई। कोई कहता है ख़ुद राजा ने चलाई; कोई कहता है जंगबहादुर ने।

जङ्गबहादुर एक बहुत ही होनहार और साहसी युवा थे। उस समय वे फ़ौज में कर्नल के पद पर थे। मातबरसिंह के मारे जाने पर उन्होंने राज्य-कार्य देखना शुरू किया। पर मन्त्रित्व उनको नहीं मिला। वह गगनसिंह नामक एक पुरुष को मिला। परन्तु एक ही वर्ष बाद उनके जीवन की भी समाप्ति हो गई। १४ सितम्बर, १८४६, की शाम को यह घटना हुई। इन पर नैपाल की महारानी की कृपा थी। इस लिए इनके वधिक का पता लगाने के लिए सब सरदार राजमहल में बुलाये गये। वहां जंगबहादुर भी उपस्थित थे। बातों बातों में झगड़ा हुआ और गोलियां चलने लगीं। ज़रा देर में नैपाल के ३१ सरदार और कोई १०० आदमी राजमहल के भीतर ही मारे गये। ख़ून की नदी बह निकली। राजा और रानी भयभीत होकर बनारस भग आये। जंगबहादुर के लिए रास्ता साफ़ हो गया। इस लिए आप निष्कण्टक हो कर मन्त्रित्व के आसन पर आसीन हुए। आपने सुरेन्द्रविक्रमशाह को राजा बनाया।

जंगबहादुर के पूर्वजों ने नैपाल में अच्छे अच्छे काम किये थे। यह एक मशहूर घराने के थे। इन्होंने राज्य का अच्छा प्रबन्ध किया। इनके कोई १०० लड़के लड़कियां थीं। उनका सम्बन्ध राज्य के प्रधान प्रधान सरदारों और स्वयं महाराजा-धिराज के यहां करके, जङ्गबहादुर ने सारे राज-चक्र और सरदार-चक्र को अपने हाथ में कर लिया। उन्होंने अपनी एक कन्या का विवाह नैपाल के

युवराज से भी कर दिया। १८५० ईसवी में जङ्ग-बहादुर इंगलैंड गये। वहां इनकी बहुत ख़ातिरदारी हुई। इंगलैंड में इन्होंने अंगरेज़ी सभ्यता के ध्यान से देखा और अङ्गरेज़ों के प्रचण्ड प्रताप का भी अच्छी तरह अनुभव किया। इसका फल यह हुआ कि नैपाल लैाट कर इन्होंने अपने देश के क़ानून में उचित फेर फार किये। इन्होंने अङ्गभङ्ग करने का दण्ड उठा दिया। सती की प्रथा में भी कुछ रुकावट कर दी गई। सेना में भी सुधार किया गया। सारांश यह कि जङ्गबहादुर ने जिसमें प्रजा और देश का कल्याण समझा उसे करने में उन्होंने सङ्कोच नहीं किया। विलायत से लैाटने पर लोगों ने इन पर यह दोष लगाया कि समुद्र पार जाने से ये धर्म्मच्युत हो गये। इससे ये मन्त्री होने के लायक़ नहीं रहे। इन दोषारोपण करने वालों में जङ्ग-बहादुर के दो भाई भी थे—एक सगे, एक चचेरे। इसमें महाराजाधिराज के एक भाई भी शामिल थे। ये लोग नैपाल से हटा दिये गये और इलाहाबाद में आकर रहने लगे। पर १८५३ ईसवी में उनको नैपाल लैाट जाने की आज्ञा मिल गई। १८५७ ईसवी के सिपाही-विद्रोह में जङ्गबहादुर ने बहुत सी फ़ौज भेज कर अँगरेज़राज की मदद की। इसके उपलक्ष्य में गवर्नमेण्ट ने तराई का एक हिस्सा नैपाल के दे दिया और जङ्गबहादुर को जी० सी० बी० की पदवी से विभूषित किया। १८७३ ईसवी में वे जी० सी० एस० आई० बनाये गये। १८७७ में जङ्गबहादुर की मृत्यु हुई। अपने समय तक यही एक ऐसे मन्त्री हुए जिनकी स्वाभाविक मृत्यु हुई। महाराज जङ्गबहादुर के ज्येष्ठ पुत्र जनरल पद्मजङ्ग इस समय प्रयाग में रहते हैं।

१८७५ ईसवी में राजराजेश्वर सातवें एडवर्ड सैर के लिए हिन्दुस्तान आये थे। उस समय आप "प्रिन्स आफ़ वेल्स" कहलाते थे। आपने नैपाल को तराई में शिकार खेला था। शिकार का सब प्रबन्ध महाराज जङ्गबहादुर ने ख़ुद किया था। वे प्रिन्स से मिलने आये थे। उनके आतिथ्य से प्रिंस बहुत प्रसन्न हुए थे।

महाराज जङ्गबहादुर का शंखेलामा नामक एक योगी पर बहुत प्रेम था। इस योगी को बज़ोली मुद्रा सिद्ध थी। वह अपने शिश्न से शंख बजा सकता था और उसी मार्ग से कटोरा भर दूध शोष लेता था।

१८८५ ईसवी में नैपाल के सरदारमण्डल में फिर विद्रोह हुआ। इसमें उस समय के मन्त्री, और जङ्गबहादुर के एक बेटे और एक पोते की जान गई। विद्रोहकर्ता थे वीरशमशेरजङ्ग राना। शिरच्छेद करने में ख़ूब पराक्रम दिखला कर आप ने मन्त्री का आसन छीन लिया। तब से आप नैपाल के हर्ता कर्त्ता हुए। आपको के० सी० एस० आई० का ख़िताब भी मिला।

नैपाल के वर्तमान नरेश, महाराजाधिराज, और मन्त्री दोनों बहुत योग्य हैं। गत वर्ष तिब्बत मिशन को नैपाल से बहुत मदद मिली थी। इस उपलक्ष्य में अँगरेज़ी गवर्नमेण्ट ने मन्त्री जी को जी० सी० एस० आई० की उपाधि से अलंकृत किया है। २६ एप्रिल, १९०५, को काठमाण्डू में एक दरबार किया गया। उसमें महाराज चन्द्रशमशेरजङ्ग राना बहादुर को रेज़िडण्ट साहब ने इस पदवी का सूचक पदक पहनाया। यही राना बहादुर आज कल नैपाल के मन्त्री हैं। दरबार में महाराजाधिराज भी पधारे थे। आपने रेज़िडण्ट साहब की अभ्यर्थना उठ कर की थी और एक वक्तृता भी दी थी। आपकी वक्तृता को आपके राजगुरु ने पढ़ कर सुनाया था।

नैपाल के वर्तमान नरेश महाराजधिराज पृथ्वी-वीरविक्रम-शमशेर-जङ्गबहादुर शाह का जन्म ८ अगस्त, १८७४, को हुआ था। १७ मार्च १८८१, को आप अपने पितामह की गद्दी पर बैठे थे। आप बहुत रूपवान् हैं। गुण भी आप में अनेक हैं। आप अंगरेज़ी ख़ूब लिख पढ़ सकते हैं और बोलते भी हैं। आप महाराजा जङ्गबहादुर के दौहित्र हैं।

पूर्वी हिन्दी का एक और नमूना।

पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद तिवारी अजमेर में एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं। आपके पीछे अनेक काम लगे रहते हैं। तिस पर भी आपको हिन्दी से इतना शौक़ है कि कुछ न कुछ आप हिन्दी में लिखा ही करते हैं। कई साल से आप एक पुराने हिन्दी ग्रन्थ के सम्पादन में लगे हैं। उसके प्रकाशित हो जाने पर हिन्दी साहित्य में वह एक रत्नरूप होगा। आप लिखते हैं—

"आपने डाक्टर ग्रियर्सन की पूर्वी हिन्दी पर जो लेख सरस्वती में प्रकाशित किया है उसे पढ़ कर हमें बड़ी ख़ुशी हुई। डाक्टर साहब ने बोलियों के जो नमूने अपनी किताब में दिये हैं, उन्होंने हम को भी आपही की तरह निराश किया। जान पड़ता है, इन नमूनों को ज़िले के दफ़्तरों में ऐसे बाबू या मुन्शी लोगों ने तैयार किया है जो देहातियों की बोली से अच्छी तरह परिचित नहीं थे। आप जानते ही हैं, हमारा घर उनाव के ज़िले में है। वहां की बोली हमारी मातृभाषा है। डाक्टर साहब ने अपनी किताब की सातवीं जिल्द के ८७ पृष्ठ में उनाव के ज़िले की अवधी बोली का जो नमूना दिया है वह ठीक नहीं है। वह नमूना यह है—

"याक जने क्यार दुइ लरिका रहैँ। वहिमाँ मते छुवटकवैँ अपने बाप ते कहसि कि बापू! घर गिरिस्ती माँ म्वार जउन होँसा होय तउन म्वैँहिका दै देउ। तब उइँ वहिका होँसा बाँटि दीन्हेसि। थोरे दिनन पाछे वहै छुवटकवा लरिका सबियां जमा-जथा लै कै बड़ी दूरि आमे देस चला गा अउर अपन रुपया पइसा कुकरम माँ गँवाइ दीन्हेसि। जब सबियाँ गँवाइ चुका तब उइ देस माँ झूरा परा अउर वहु भूख्यन मरन लाग। तब उँइ याक भले मानस ते मिलापु कीन। तब उइँ वहिका सोरी चरैबे काज अपने ख्यातन पठयसि। उइ बेरिया वहिका ऐसि लालसा रहै कि उइ ब्वकला जउन सोरी खाती रहैँ तिनहिन ते अपन पेटु भरैं। सो ओऊ वहिका केहूँ नाईँ दीन। तब वहिका चेतु आवा कि मोरे बाप तीर अइस नउकर चाकर बहुत है, कि जनका पेटु भरि रोटी मिलति है अउर मैँ हियाँ उपास करति हौं। अब मैँ अपने बापै तीर जाइ कै कहिहौं कि मैं गुसइयाँ केरि अउर तुम्हारि दुनहुन केरि चूक कीनि हौं, अउर अब मैं तुम्हार पूत कहावै लाउक नाँईँ हौं, तेहिते मँहि का अपने नउकरिहन माँ गनि लेउ।"

इसमें बोली से सम्बन्ध रखनेवाली त्रुटियों पर हम कुछ नहीं कहते। पर यहां जो यह कहा गया है कि वह लड़का किसी भले मानुस से मिला और उसने उस लड़के को सुअर चराने के काम पर रक्खा, सो यह बात इस देश में सर्वथा असंगत है। क्योंकि कोई भला आदमी उनाव के ज़िले में क्या, इस देश में कहीं भी, सुअर नहीं रखता। इस जानवर के मालिक केवल हीन जाति के लोग धानुक, पासी, चमार आदि ही होते हैं। उनकी भले मानसों में कोई गिनती नहीं करता।

अंगरेज़ों के यहां सुअर पालना मना नहीं है। पर डाक्टर साहब यह ज़रूर जानते होंगे कि हिन्दुस्तान के भले आदमी सुअर नहीं पालते। फिर ऐसी नापाक कहानी क्यों इस किताब में आपने रक्खी? नहीं मालूम किस पवित्र जीव ने ऐसी गन्दी कहानी भेज कर साहब की किताब को भ्रष्ट कर दिया?

साहब की इस किताब के ८९ पृष्ठ पर उनाव के ज़िले की बोली का जो दूसरा नमूना है उसमें भी कई गलतियां हैं। पर अब गलतियां दिखलाने और बोलियों के नमूनों के भीतर बे सिर पैर की बातों को बतलाने से क्या लाभ?

फ़ोटोग्राफ़ी के उपयोग।

फ़ोटोग्राफ़ी किसे कहते हैं यह सरस्वती के पाठकों को विदित ही होगा। रासायनिक प्रयोगों से प्रकाश द्वारा जो चित्र लिये जाते हैं उन को फ़ोटो कहते हैं। इस तरह के चित्र लेने की विद्या का नाम फ़ोटोग्राफ़ी है। पहले सब चित्र हाथ से बनाये जाते थे। वह काम बहुत कष्टजनक था और देर में होता था। परन्तु अब फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से बड़े बड़े चित्र सहज ही बना लिये जाते हैं। फ़ोटोग्राफ़ी से किस किस प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

१—मनुष्यों के फ़ोटो।

मनुष्यों के फ़ोटो खींचने को अङ्गरेज़ी में पोरट्रेट फ़ोटोग्राफ़ी (Portrait Photography) कहते हैं। इसका महत्व सर्व सामान्य में इतना अधिक है कि फ़ोटोग्राफ़ी का अर्थ मनुष्यों के फ़ोटो ही माना जाता है। इस लोकमान्यता के दो कारण हैं। एक तो उसका सस्तापन, दूसरे उसके बनाने में समय का कम लगना। हाथ से बने हुए चित्रों में ये दोनों बातें नहीं होतीं। उनमें समय और खर्च दोनों अधिक लगते हैं। बड़े निपुण चित्रकार को छोड़ कर मामूली चित्रकारों का आदर अब फ़ोटोग्राफ़ी के सामने बहुत ही कम हो गया है। लोगों का यह विश्वास है कि फ़ोटोग्राफ़ी में कोई त्रुटि नहीं है। अर्थात् जिसका फ़ोटो लिया जाता है उसमें और उसके फ़ोटो में ज़रा भी असदृशता नहीं होती है। परन्तु अच्छी तरह देखा जाय तो यह विश्वास ग़लत प्रतीत होगा। फ़ोटोग्राफ़ी में भी दोष रह जाते हैं। हमारा स्वभाव सब चीज़ों को बहुत जल्दी देखने का है। इसीसे चीज़ के गुण दोष जांचने का अभ्यास नहीं रहता। फ़ोटोग्राफ़ी में स्वाभाविक अर्थात् लेन्स (Lens) सम्बन्धी दोष होते हैं। इन दोषों के सिवा और भी अनेक कठिनाइयां फ़ोटोग्राफ़र को झेलनी पड़ती हैं। क्योंकि उत्तम फ़ोटो बना लेना कोई सहज बात नहीं है।

सबसे पहले फ़ोटोग्राफ़र को सरसता और सुघराई का ज्ञान होना बहुत ज़रूरी है। फ़ोटो खिंचवाने वाले का स्वाभाविक आसन और भाव दिखलाना, जातीय दोष छिपाना, और जो भाग मुख्य और उत्तम हो उसे अच्छी तरह दिखलाना, इत्यादि ऐसी बातें हैं जिनमें निपुणता प्राप्त करनी पड़ती है। हाथ के चित्र बनाने में यह सुभीता रहता है कि चित्रकार जिन चीज़ों को निकम्मी अथवा चित्रकी शोभा बिगाड़नेवाली समझे, उनको अपने चित्र में न ले। परन्तु फ़ोटोग्राफ़ी में यह नहीं हो सकता। इसमें जिसका चित्र खींचा जाता है उसके आस पास की सब चीज़ों का चित्र खिंच जाता है। इसी लिये फ़ोटोग्राफ़र को सरसता का ज्ञान हुये बिना उत्तम फ़ोटो नहीं खींचा जा सकता। निकम्मी चीज़ों को भर देने से फ़ोटो की सुन्दरता घट जाती है। फ़ोटोग्राफ़र की परीक्षा इसीसे हो सकती है। बाक़ी काम कुछ दिनों के अभ्यास से बहुत सहज हो जाता है।

जैसे चित्र की चीज़ों को यथास्थान रखने से चित्रका सौंदर्य बढ़ जाता है, वैसे ही——नहीं उससे भी बढ़कर——प्रकाश और छाया (Light and shade) का प्रमाण ठीक रखने से चित्र में सजीवता आ जाती है। जब तक प्रकाश और छाया का प्रमाण ठीक नहीं होता तब तक कोई चित्र सजीव और सुन्दर नहीं होता।

वस्त्राभरण इत्यादि से भी फ़ोटो की शोभा बढ़ जाती है। मनुष्यों के लिये काले कपड़े उत्तम होते हैं। दुबले पतले और फीके चेहरे के मनुष्यों को सफ़ेद कपड़े पहनाने से फ़ोटो में थोड़ी स्थूलता आ जाती है। ऊनी और मोटे कपड़ों से स्त्रियों के फ़ोटो भद्दे हो जाते हैं। रेशमी और धारीदार हलके कपड़े अच्छे खिलते हैं। बहुत चमकीले रङ्ग भी नहीं खिलते। क्योंकि पीले, बादामी इत्यादि बहुत से रङ्ग तो काले हो जाते हैं और हरे, नीले, बैंगनी

इत्यादि सफ़ेद हो जाते हैं। इसका अनुमान फ़ोटोग्राफ़र को कुछ दिनों में हो जाता है; और वह अपनी सलाह से फ़ोटो खिँचवाने वाले को कपड़ा पहनने के विषय में सहायता दे सकता है।

मौसम और समय इत्यादि की कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। गरमी में प्रकाश बहुत होता है और सरदी में कम। बहुत अधिक अथवा बहुत कम प्रकाश में फ़ोटो ठीक नहीं बनते। केमेरा (Camera) में कितना प्रकाश होना चाहिये इसका अभ्यास करना पड़ता है। जितना ही चित्र केमेरे में साफ़ दिखलाई देगा उतना ही कम समय फ़ोटो लेने में लगेगा।

फ़ोटोग्राफ़ी से छोटा ही चित्र उत्तम बनता है। मनुष्य के डील के एक चौथाई के बराबर (quarter life-size) भी फ़ोटो नहीं खींचे जा सकते। परन्तु बड़े चित्रों की मांग बहुत होती है। इससे फ़ोटो बढ़ानेवाले एक यन्त्र (Enlarging apparatus) से फ़ोटोग्राफ़र छोटी फ़ोटो को बढ़ा सकते हैं; यहां तक कि उसे वे आदमी के क़द के बराबर भी बना सकते हैं।

२—भूमि-सम्बन्धी फ़ोटो।

पेड़, नदी, पहाड़, इमारतें इत्यादि भूमि-सम्बन्धी चित्रों को भूमि-प्रदेश (Landscape) के चित्र कहते हैं। इनकी मांग सर्व साधारण में कम है। इस लिये इसमें मनुष्यों के फ़ोटो की भांति उन्नति नहीं हुई है। ऐसे चित्रों को लोग सुन्दरता के ख़याल से कम ख़रीदते हैं। परन्तु किसी अच्छे स्थान की यादगार समझकर वे लेते हैं। मनुष्य की फ़ोटो लेने में जितनी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं, भूमिप्रदेश के फ़ोटो में उससे कम नहीं उठानी पड़तीं। जो ऐसे फ़ोटो लेना चाहते हैं उनकी सफलता हवा और मौसम पर अवलम्बित रहती है। यदि हवा चलती हो तो हिल जाने से फ़ोटो बिगड़ जाते हैं। मौसम और समय का प्रभाव भी भूमिप्रदेश वाले फ़ोटो पर मनुष्य के फ़ोटो से अधिक होता है। जो भाव सुबह होता है वह दोपहर और शाम को नहीं होता है। कुछ दिनों के अभ्यास से यह मालूम हो जाता है कि कौन समय इस तरह का फ़ोटो लेने के लिए अच्छा है। यह भी देखना पड़ता है कि किस स्थान से फ़ोटो का सौंदर्य बढ़ता है, क्योंकि दो चार क़दम इधर उधर से खींचने में बहुत अन्तर हो जाता है। इस लिये उचित स्थान खोजने में चतुराई की आवश्यकता है। प्रकाश और छाया का प्रमाण ठीक होने से फ़ोटो की शोभा बढ़ती है। इससे इसका भी ख़याल रखना पड़ता है।

ऊपरी नज़र से देखने से भूमिप्रदेश के फ़ोटो की आवश्यकता नहीं दिखलाई देती, परन्तु भूगोल सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति इससे बहुत होती है। दूर दूर देशों के पहाड़, नदी, झरने, इमारत, पशु, पक्षी, वृक्ष, पौधे, इत्यादि को प्रत्यक्ष दिखलाने का साधन इससे बढ़कर और कोई नहीं है। ऐसे चित्रों के देखने के लिये एक यन्त्र है जिसको स्टीरियोस्कोप (Stereoscope) कहते हैं। उसमें फ़ोटो रखकर देखने से सब चीज़ें बड़ी बड़ी और स्वाभाविक दिखलाई देती हैं।

भूमिप्रदेश के फ़ोटो की एक शाखा सर्व दिग्दर्शक (Panoramic) अर्थात् सब तरफ़ देखनेवाली है। अपनी आँखों से हम चारों तरफ़ एक दम नहीं देख सकते; सिर्फ़ एकही चौथाई देख सकते हैं। बाकी देखने के लिये घूमना पड़ता है। इससे ऐसे फ़ोटो लेने के लिये एक ख़ास घूमनेवाला केमेरा (Camera) दरकार होता है और उसकी क्रिया भी निराली होती है।

३—ज्योतिष-विद्या और फ़ोटोग्राफ़ी।

ज्योतिष में फ़ोटोग्राफ़ी से दो काम होते हैं। एक आकाश के दृश्य—जैसे सूर्य, चन्द्रमा, तारा, ग्रहण इत्यादि का फ़ोटो लेना; दूसरे उन फ़ोटो चित्रों से उनकी दूरी का अनुमान करना। सूर्यग्रहण के समय आँख से देखने पर कुछ विशेषता नहीं प्रतीत होती; परन्तु फ़ोटो से यह देख पड़ता है कि सूर्य के काले कुण्डल से, सर्वग्रास ग्रहण के समय, आग की ज्वाला सी निकल रही है।

खग्रास अर्थात् पूरे ग्रहण के समय हज़ारों फ़ोटोग्राफ़र ग्रहण की फ़ोटो, इस बात का पता लगाने के लिये, लेते हैं कि यह आग की ज्वाला के समान क्या वस्तु है। समय समय पर साधारण सूर्य के जो फ़ोटो लिये जाते हैं उनको ग्रहण के समय के फ़ोटो से मिलान करने पर जो अन्तर सूर्य में ग्रहण के समय होता है सो भी मालूम हो जाता है। फ़ोटोग्राफ़ी ही से यह बात सिद्ध हुई है कि सूर्य में निरंतर परिवर्तन हुआ करता है और जो धब्बे होते हैं वे कभी दिखलाई देते हैं, कभी घट बढ़ जाते हैं, और कभी नहीं भी दिखलाई देते हैं। तारों की फ़ोटो लेने से यह जाना जाता है कि एक तारा दूसरे से कितनी दूर है। उससे यह भी जाना गया है कि ध्रुव तारे भी चलते हैं। ऐसी ऐसी अनेक नई बातें फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से प्रकट हुई हैं और होती भी जाती हैं।

४—सूक्ष्मदर्शक फ़ोटोग्राफ़ी।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) की सहायता से अत्यन्त सूक्ष्मपदार्थ देखे जाते हैं। एक पानी के बूंद में अनेक कोड़े होते हैं, जिनको हम आँख से नहीं देख सकते। परंतु सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से वे सब कीड़े साफ़ साफ़ देख पड़ते हैं। इसी तरह और भी अनेक छोटी छोटी चीज़ों के देखने की ज़रूरत पड़ती है। रसायन और वैधक विद्या में भी सूक्ष्म पदार्थ देखने पड़ते हैं। सूक्ष्मदर्शक फ़ोटोग्राफ़ी के यन्त्र से इन सूक्ष्म पदार्थों के फ़ोटो ले लिये जाते हैं। फ़ोटोग्राफ़ी से सूक्ष्म पदार्थ का बड़ा चित्र बनाया जाता है; और बड़े पदार्थ का चित्र बहुत छोटा भी बन सकता है।

पाठकों को विदित होगा कि बाज़ार में ऐसी अंगूठियाँ बिका करती हैं जिनके नग के भीतर फ़ोटो रहते हैं। असल में इन अंगूठियों में नग नहीं होता। उनमें एक सूक्ष्मदर्शक कांच (Lens) लगा होता है। उसीके पीछे एक छोटा फ़ोटो रहता है। इसीसे फ़ोटो बड़ा और साफ़ देख पड़ता है। यही नहीं, किन्तु बड़ी बड़ी पुस्तकें जैसे अंगरेज़ी कोश, गोता, और कुरान इत्यादि फ़ोटोग्राफ़ी के द्वारा इतनी छोटी छप गई हैं कि पूरी पुस्तक एक घन इंच से अधिक नहीं है। इन पुस्तकों के पढ़ने के लिये सूक्ष्मदर्शक यंत्र की आवश्यकता होती है।

फ्रांस में पेरिस शहर के एक विद्वान ने इस फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से पहले पहल एक ऐसी युक्ति निकाली जिससे सब संसार चकित हो गया। पाठक यह जानते होंगे कि एक प्रकार के कबूतर होते हैं जो सिखलाने से चिट्ठियां एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते हैं। लड़ाई के समय ऐसे कबूतरों से बहुधा काम लिया जाता है। जब एक तरफ़ को फ़ौज या क़िले को दूसरी तरफ़ वाले, अर्थात् दुश्मन, घेर लेते हैं तब घिरे हुये मनुष्य अपना समाचार ऐसेही कबूतरों के द्वारा भेजते हैं। ये कबूतर बहुत ही हलकी चिट्ठियां ले जा सकते हैं। इस लिये पहले बहुत थोड़े समाचार भेजे जा सकते थे। इस कमी को दूर करने के लिए उस विद्वान ने यह युक्ति निकाली कि एक बड़े पन्ने पर सब समाचार उसने टाइप में छाप लिया, फिर उसका सूक्ष्म फ़ोटो लिया गया जो केवल डेढ़ इंच चौरस कागज़ पर छप गया। इस बड़ी चिट्ठी के सूक्ष्म फ़ोटो को उसने कबूतर द्वारा भेज दिया। जब वह अपनी जगह पर पहुंची तब वह यंत्र द्वारा बड़ी (Enlarge) की गई और बहुत से लेखकों ने उसकी नकलें बना बना कर उन्हें जहां जाना था फ़ौरन ही भेज दिया।

सन् १८७० ईसवी में पेरिस शहर को जब शत्रुओंने घेर लिया था, तब छ महीने तक घिरे हुये पेरिस वालों ने इसी तरह बाहर वालों से पत्र व्यवहार किया था। सब लोग अपने कुटुम्बियों को अपनी कुशलताके समाचार इसी तरह भेजते रहे थे।

५—वैधक और फ़ोटोग्राफ़ी।

वैधक शास्त्र ने फ़ोटोग्राफ़ी से बड़ा लाभ उठाया है। शरीर की बनावट के, थोड़ी देर रहनेवाले शारीरिक दृश्यों के, और शरीर की सब इन्द्रियों

के फ़ोटो लिये जाते हैं। जीवित शरीर की आँख, कान, कण्ठनाल इत्यादि के भीतर के भिन्न भिन्न भाग यन्त्रों द्वारा देखे जाते हैं और उनके फ़ोटो भी लिये जाते हैं। कुछ रोगों में मनुष्य के रक्त में कई प्रकार के कीड़े हो जाते हैं। उनका आकार देखना डाकृरों को चिकित्सा के लिये आवश्यक होता है। ऐसे रोगी मनुष्य के शरीर से एक दो बूंद रक्त निकाल कर उसे डाकृर सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखते हैं और उसके समय समय पर फ़ोटो भी ले लेते हैं। चिकित्सा से जो हानि या लाभ होता है वह इस तरह मालूम हो जाता है।

६—वैज्ञानिक यन्त्रों का अवलोकन और फ़ोटोग्राफ़ी।

फ़ोटोग्राफ़ी से आकाश-विद्या-सम्बन्धी (Meteorological) जांच में सहायता होती है। आकाश में जो उल्का आदि अनेक पिण्ड हैं उनके सम्बन्ध में विचार करने के लिए बैरोमीटर और थरमामीटर को मिनट मिनट पर देखना पड़ता है। यदि इस देख भाल के लिये मनुष्य रहें तो अधिक ख़र्च पड़े और तकलीफ़ भी बहुत हो। इसलिये फ़ोटोग्राफ़ी से यह काम लिया जाता है। उससे बैरोमीटर और थरमामीटर के चौबीसों घण्टे के उतरने चढ़ने का फ़ोटो खिँच जाता है।

७—न्याय और फ़ोटोग्राफ़ी।

न्याय करने में भी फ़ोटोग्राफ़ी काम आती है। पुराने मुलज़िम, चोर, डाकू इत्यादि के पकड़ने में इससे बहुत सहायता मिलती है। जेल में क़ैदियों की फ़ोटो ले लेने से यदि वे भाग जाँय तो फिर पकड़े जाते हैं। और यदि वे दुबारा अपराध करने पर पकड़े जांय तो सहजही साबित हो जाता है कि वे पहले के अपराधी हैं। गुप्त पुलिस के पास ऐसे पुराने अपराधियों के फ़ोटो रहते हैं जिससे उन्हें पकड़ने में पुलिस को बड़ा सुभीता होता है। जाली दस्तावेज़ों के भी फ़ोटो ले लिये जाते हैं। और चोरी के माल के फ़ोटो उतार कर उसके मालिकों का पता लगाया जाता है।

८—फुटकर बातें और फ़ोटोग्राफ़ी।

साधारण कागज़ पर बनाये हुये फ़ोटो आग वग़ैरह से बरबाद हो जाते हैं। इस लिये चीनी के बरतन और कांच पर फ़ोटो खींचने की युक्ति निकाली गई है। उस तरह पर बहुत सुन्दर फ़ोटो खींच लिये जाने लगे हैं और चित्रकार (Painter) अर्थात् रंगीन चित्र बनानेवालों की आवश्यकता कम हो गई है।

फ़ोटोग्राफ़ी से ज़मीन की पैमाइश होती है। इमारतें और कलों के फ़ोटो ले लेने से इंजिनियरों को बहुत मदद मिलती है। फ़ोटोग्राफ़ी कितने काम की चीज़ है यह ऊपर वर्णन किये गये भिन्न भिन्न उपयोगों से विदित है। इससे सब काम सुगम हो जाते हैं। इसीलिये यह सारे कला कौशलों का जीवन-सर्वस्व हो रही है। और ऐसा शायद ही कोई विषय हो जहां इससे काम न पड़ता हो। छापाख़ाना होने से जैसे ज्ञान और विज्ञान की उन्नति में सहायता हुई है, तैसेही फ़ोटोग्राफ़ी से कला कौशल में उन्नति हुई है।

तार और छापेख़ाने की बदौलत हज़ारों मील दूर के शहरों में दी गई वक्तृतायें दूसरे दिन छपकर सारे संसार में फैल जाती हैं। और सब तरह की नई नई ख़बरें नित्य घर बैठे हमको मिलती हैं। इसी तरह बड़े बड़े जलसों और युद्धों की, सुविख्यात पुरुषों और स्त्रियों की, मनोहर और रमणीक स्थानों की, सुन्दर सुन्दर इमारतों की फ़ोटो स्टीरियोस्कोप और बायोग्राफ़ द्वारा हमें प्रत्यक्ष देखने को मिलती हैं। रामदुलारी दुबे।

फीजी द्वीप के असभ्य निवासी।

पैसिफ़िक महासागर में, आस्ट्रेलिया देश के पूर्व, फीजी द्वीप-समूह नामक छोटे छोटे टापुओं का एक झुण्ड है। आस्ट्रेलिया के सिडनी नामक बन्दरगाह से पूर्व और उत्तर के कोण में कोई १७२५ मील को



नेपाली सिपाही—पहरे पर।



गुरखा सिपाही—अङ्गरेज़ी सरकार के नौकर।



नेपाल की राजमाता
[महाराजा जंगबहादुर की कन्या]



बड़ी महारानी हिरण्यगर्भकुमारी
महाराजा जंगबहादुर की धर्म्मपत्नी।

दूरी पर यह द्वीपसमूह स्थित है। सन् १८३५ ई० में पहले पहल अंगरेज़ मिशनरी लोग वहां गये।

उस समय वहां के निवासी बड़े असभ्य और नरमांस-भक्षक थे। यद्यपि इस समय वे कुछ कुछ सभ्य हो चले हैं और उनमें से बहुत ईसाई हो गये हैं, पर उनकी उस समय की नरमांस-भक्षण आदि घृणित बातों का हाल पढ़ कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और मनुष्य की अधमता पर आश्चर्य्य होता है।

उस समय पादरी लोग मारे भय के समुद्र के तट ही पर अपना खेमा लगाते थे; भीतर बहुत दूर तक नहीं जाते थे। इन्हीं का लिखा हुआ एक दृश्य देखिये। सब लोग खेमे के अन्दर बैठे हुए हैं। सामने एक बीहड़ जङ्गल है। अकस्मात् जङ्गल में भयङ्कर कल कल सुनाई देने लगा। और दस पन्द्रह मिनट में दो सेनायें तीस तीस चालीस आदमियों की सम्मुख आकर आपस में घोर संग्राम करने लगीं। कोई आध घण्टे तक युद्ध रहा। पीछे एक सेना भाग निकली और उसके १०।१२ आदमी खेत रहे। विजयिनी सेना ने उन लाशों को कन्धों पर रक्खा और चलती हुई। यदि वह सेना उसी जगह की हुई तो उसी स्थान पर एक बड़ा भारी अलाव, लगभग १५ गज़ लंबा और दस गज़ चौड़ा, लगाया गया। सब लोगों ने बहुत सी लकड़ियां और फूस इत्यादि लाकर वहीं ढेर किया। अपनी स्त्रियों और बच्चों को भी उन्होंने वहीं बुलाया। पहले उन लोगों ने उन मुर्दों को खूब गाली देना आरम्भ किया। कोई कहता है "उठते अब क्यों नहीं? निकल गई सारी शेख़ी"। कोई कहता है बताओ कल तुमने क्या खाया था जो आज ऐसे पड़े हो"—इत्यादि इत्यादि। उन की गालियां भी ऐसी अश्लील होती हैं कि उनके स्मरण मात्र से मनुष्य का मन अपवित्र हो जाता है। छोटे छोटे बच्चे भी, जिनको अभी अच्छी प्रकार बोलना भी नहीं आता, इस गाली दान का पुण्य बटोरते हैं और अपने कोमल कोमल हाथों से लाशों पर मुष्टिप्रहार करते हैं।

पादरी लोग लिखते हैं कि जब हम लोगों ने बाइबिल में बच्चों का फ़रिश्ते कहा जाना स्मरण किया और इन छोटे छोटे बच्चों को अपने सामने ऐसा करते देखा, तब हमलोगों का हृदय मारे करुणा के विदीर्ण होने लगा; और ऐसा मालूम होने लगा कि मानों प्रलय का दिन आ पहुंचा हो। जब सब लोग खूब गाली दे चुके, तब लाशें अग्नि में भूनी गईं और सब लोग इकट्ठा होकर नोच नाच कर उन्हें खाने और नाचने लगे। उस समय हमलोगों का जो हाल था वह न तो हम कही सकते हैं और न कोई समझ ही सकता है। हमलोगों का खून सूख रहा था और सिर से पैर तक पसीना निकल रहा था।

परन्तु अब ऐसे दृश्य वहां बहुत कम देखने में आते हैं। अंगरेज़ी गवर्नमेंट की कृपा से अब वहां सभ्यता का सञ्चार हो चला है और वहां के असभ्यों के जीवन में अब इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि उन्हें देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि ये कभी नरभक्षी रहे होंगे।

फीजी टापुओं में कोई अन्न नहीं उत्पन्न होता और न किसी प्रकार का फल ही होता है। वहां के निवासी खेती करना भी नहीं जानते। पर हां, अब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट उन्हें खेती करना सिखला रही है। भेड़, बकरी, इत्यादि कोई भी चौपाये वहां नहीं थे कि जिस का मांस वहां के लोग खा सकते। कदाचित् यही कारण है कि वहां के लोग पहले नरमांस खाते थे। उनकी जीवनयात्रा मछली, केकड़े, कछुए, नरमांस और एक प्रकार के कन्द-मूल से कटती थी। परन्तु अब वहां प्रायः सब जीव योरप वालों ने पहुंचाये हैं। अब वहां बहुत तरह की चीज़ें भी उत्पन्न होने लगी हैं, और अन्य अन्य देशों से भी पहुंचाई जाने लगी हैं। योरप की लगभग सभी जातियां वहां पहुंच गई हैं; और वहां के निवासियों से भली प्रकार क्रय विक्रय होने लगा है। अङ्गरेज़, फरासीसी, जर्मन, रूस, चीन और जापानी वहां पहुंचे हैं और उन्होंने अपनी अपनी दूकानें खोल रक्खी हैं। अब वे बिना किसी भय के अपना अपना व्यवसाय करते हैं।

वहां के लोगों की राजभक्ति बड़ी ही प्रशंसनीय है। उनकी धर्म्मनिष्ठा भी बड़ी प्रबल है। जब से वे लोग ईसाई हुए हैं तब से वे अपने मत में बड़े कट्टर हैं। किसी नियम का वे उल्लंघन नहीं करते। बराबर, नियत समय पर, गिर्जाघर में जाना और जो कुछ धर्म का आदेश है उसको पूर्ण रीति से प्रतिपालन करना, उन लोगों का काम है। वे शराब नहीं पीते। अब तक वे जानते ही नहीं थे कि शराब किसको कहते हैं। परन्तु अब विलायत वाले उन्हें ख़राब कर रहे हैं। मद्यपान की आदत उनमें उत्पन्न करने की वे चेष्टा कर रहे हैं कि जिसमें उनका व्यापार ख़ूब बढ़े। वे बेचारे कभी कभी इनके फन्दे में आ भी जाते हैं। सर्कार ने मना कर दिया है कि शराब देशियों के हाथ न बेंची जाय। परन्तु व्यापारी कब मानते हैं। आज कल वे सर्कार पर दबाव डाल रहे हैं कि देशियों के हाथ शराब बेचने की इजाज़त दे दी जाय।

फीजी लोग बड़े शान्तिप्रिय और राजभक्त हैं। जब से ब्रिटिश राज्य वहां स्थापित हुआ है तब से आजतक एक भी विद्रोह वहां नहीं हुआ। वे लोग चोरी, बदमाशी, दङ्गा और फ़साद का नाम भी नहीं जानते। दस वर्ष हुए कि एक आदमी को नरहत्या के अपराध में फांसी हुई थी। तब से आज तक वहां कोई फांसी नहीं चढ़ा। जेलख़ाने में भी १०-१२ से अधिक क़ैदी कभी नहीं मिलेंगे और वे भी ऐसे अपराधों के कारण जेल में भेजे गये होंगे जो ब्रिटिश न्याय के अनुसार अपराध ही नहीं हैं। फीजी लोगों ही के आचार-व्यवहारों के हिसाब से वे अपराध हैं। उदाहरण के लिये —फीजी सर्दार को अपनी प्रजा पर सर्वतोमुख अधिकार है। वह उनके जान, माल, स्त्री, पुत्र सभी का पूर्ण रूप से हर्ता, कर्ता, विधाता है। जिसे वह चाहै मारे, जिसे वह चाहै जिलावै। उसकी अपील कहीं नहीं हो सकती। जो कुछ वह हुक्म देगा वह प्रजा को अवश्य मानना पड़ेगा। सरदार वहां ईश्वर तुल्य है। प्रजा उसका बड़ाही भय करती है। अब सरदार ब्रिटिश राज्य के अधीन हैं और पहले का ऐसा यथेच्छ अत्याचार नहीं करने पाते। तो भी प्रजा उनसे पहले ही की भांति डरती है। उनके यहां यह रीति है कि जो कोई कछुआ अथवा मछली पकड़े वह पहले उसे सरदार के पास ले जाय। यदि सरदार उसे न ले तो वह उसे अपने काम में ला सकता है। कई फीजी लोगों ने इस नियम का उल्लंघन किया और कहा कि सरदार का कोई हक़ नहीं है। सरदार ने उन्हें जेल में भेज दिया। बस, ऐसे ही छोटे छोटे अपराधों के कारण क़ैद किये गये क़ैदी दस पांच मिलेंगे। अधिक नहीं।

फीजी लोगों का रंग काला नहीं है, सुर्ख़ी लिये हुए भूरा है। मर्द वहां के बड़े पुष्ट, लम्बे चौड़े और सुन्दर होते हैं। स्त्रियां प्रायः यूरोपियन स्त्रियों की इतनी सुन्दर होती हैं। उन लोगों के शरीर भर में बाल बड़े ही विलक्षण होते हैं। विशेषता उनमें यह है कि वे बहुत ही घने होते हैं और सीधे तीन चार इंच तक खड़े रहते हैं। ये बाल उनके सिरों पर बहुत ही भले मालूम होते हैं। स्त्रियां मर्दों से छोटे बाल रखती हैं।

फीजी लोगों में एक अद्भुत रीति है कि सर्दार अथवा अपने से बड़े के सम्मुख खड़ा होना अनुचित समझा जाता है। दो चार आदमी खड़े बातें कर रहे हैं। जैसे ही उन्होंने सरदार को आते देखा, झट सब के सब बैठ गये। और बैठते भी ऐसी बुरी तरह हैं कि देखकर हँसी आती है। हमलोगों की भाँति पलथी मार कर, या और किसी प्रकार, वे नहीं बैठते। जो जैसे पाता है वह वैसे ही ज़मीन पर गिर पड़ता है। कोई टांगें फैलाये, कोई घुटना उठाये, कोई कैसे, कोई कैसे। दो आदमी एकही प्रकार बैठे कभी न मिलेंगे। अंगरेज़ी पड़ाव में कभी कभी बड़ा तमाशा होता है। दस पांच फीजी जल्दी से आकर सम्मुख ही धम से बैठ जायँगे। जो कुछ उन्हें कहना होगा कह कर फिर

उठेंगे, ग्रैार चले जायँगे। उन लोगों में किसीके पीछे से निकलना या पीछे से बातचीत करना बहुत ही बुरा समझा जाता है। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इन सब व्यर्थ की बातें को धीरे धीरे उठा रही है। बहुत सी तो इतने ही थोड़े दिनों में उठ भी गई हैं।

फीजी लोगों को अङ्गरेज़ी शिक्षा देने का भी विचार हो रहा है। चार या पांच फीजी लोग सिडनी में अङ्गरेज़ी शिक्षा पाने के लिये भेजे भी गये थे। वहां से पढ़ लिखकर वे वापिस भी आ गये हैं। परन्तु उनके देशवासी उनका आदर नहीं करते। उलटा उनको उन्होंने जातिच्युत कर दिया है। ग्रैार जहां कहीं वे जाते हैं लोग उनको बनाते ग्रैार उनकी दिल्लगी करते हैं। पर वे लोग भी जैसी कि उनसे आशा थी, वैसे नहीं निकले। मदिरा पीना, इधर उधर गिटपिट करते फिरना, कोट पतलून पहिनना—यही उन्होंने सीखा है। पादरी पण्डितों ने बाइबिल आदि अपनी धर्म पुस्तकों का फीजी भाषा में जो उल्था कर दिया है, उसेही वे पढ़ाते हैं।

अङ्गरेज़ी चाल ढाल फीजी लोगों में फैलती जाती है ग्रैार वे उसको पसन्द भी करने लगे हैं। यह परिवर्तन, सन् १८७५ से आज तक, केवल तीस वर्षों में हुआ है। अङ्गरेज़ लोग पहले पहल वहां १८३५ में गये ग्रैार चालीस वर्ष के घोर परिश्रम के पश्चात् वहां के सब से बड़े सर्दार को उन्होंने क्रिश्चियन कर पाया। तभी से वहां अङ्गरेज़ों का अधिकार जमा। जिस ईसाई पादरी ने इस सरदार को ईसाई कर पाया वह बड़ा साहसी था। उसके साथ जो ग्रैार पादरी आये थे वे उस सरदार का भयङ्कर पैशाचिक व्यवहार देखकर इतने भयभीत हो गये कि उनको उसके सम्मुख जाने तक का साहस न हुआ। वे निराश होकर घर लैाट गये। उनका कथन था कि यदि स्वयं प्रभु ईसामसीह वहां जाकर उसे धर्मोपदेश दें ग्रैार अपनी करामातें दिखावें तो चाहै कुछ सफलता हो। परन्तु यह बात मनुष्य के पराक्रम से बाहर है। पर उस पादरी पण्डित ने उस नरपिशाच सरदार को अपना चेला करके हो छोड़ा।

फीजी द्वीपसमूह में आठ छोटे छोटे टापू हैं। सब पास ही पास हैं। वे केवल सौ सौ या डेढ़ डेढ़ सौ गज़ चौड़ी पानी की खाड़ियों से विभक्त हैं। जिन्होंने कभी इटली के वेनिस नगर का नक़शा देखा है वे उन के आकार का अनुभव कर सकते हैं। अगर वेनिस के ऊँचे ऊँचे महल गिराकर मैदान कर दिया जाय ग्रैार उस मैदान में हरी हरी घास उग आवे, तो वेनिस दूसरा फीजी द्वीपसमूह हो जाय।

जिस सरदार का निर्देश ऊपर हुआ वह इसी द्वीपसमूह के वाऊ नामक छोटे से टापू में रहता था। उसके कुटुम्ब के सिवा ग्रैार कोई इस टापू में नहीं रहता था। यहां से वह छोटी छोटी नावों पर सवार होकर पास के टापुओं में जाया करता था ग्रैार वहां से दसबीस आदमियों को पकड़ लाया करता था। उनको अपने घर पर रस्सियों से जकड़ कर वह डाल देता था ग्रैार एक एक दे। दे। रोज़ खा जाया करता था। जब सब चुक जाते थे तब वह ग्रैार पकड़ लाता था। वह इतना बलिष्ठ था कि उसे कोई नहीं जीत सकता था। उसका नाम सुनते ही फीजियों की जान निकलती थी। बहुत लोग, जिन्होंने उसे देखा था, अभी तक जीते हैं। उनका कथन है कि यदि ऐसा दीर्घकाय ग्रैार शूरवीर कोई सभ्य यूरोपियन होता तो वह बहुत बड़ा आदमी होता।

जिस पादरी का ज़िक्र अभी हो चुका है वह कई बार अपना डेरा छोड़ कर इस सरदार के टापू में गया। उसे उसने बहुत उपदेश किया। परन्तु भला वह कब मानने वाला था। एक बार वह रुष्ट होकर अपनी भीमसेनी गदा उठाकर पादरी पण्डित को मारने चला। पादरी ने सोचा कि अब प्राण गये ग्रैार भून कर खाडाले गये। परन्तु किसी तरह आप बच गये।

कुछ वर्ष बाद वह सरदार मर गया। तब पादरी साहब उसके टापू में फिर गये तो आप क्या देखते हैं कि एक बड़ा मोटा रस्सा पाँच सुकुमार बालाओं की गर्दन में बँधा हुआ है। और पांच छः बड़े बलिष्ठ मनुष्य एक ओर से और इतने ही दूसरी ओर से उसे खींच रहे हैं। मानों रस्सा खिंचाई (tug of war) हो रही है और ५ युवतियों के मृदुल प्राणों की बाज़ी लगी है। बेचारी रस्से में लटकी हुई स्त्रियां फट फटा रही हैं। पादरी साहब झट नाव से उतरे और फीजी भाषा में चिल्लाकर कहने लगे "अरे भाई, यह क्या पैशाचिक कर्म कर रहे हो, परमात्मा के कोप से डरो, नहीं तो तुम्हारा सबका सत्यानाश हो जायगा"।

वे लोग इन्हें पहचान गये थे। इन्हें वे एक पागल पशु समझते थे। उन्होंने उत्तर दिया कि "हम लोगों के सरदार कल रात को विदेश चले गये, अर्थात् मर गये। जाते समय वे हुक्म देगये हैं कि पांच स्त्रियों को हमारी सेवा के निमित्त हमारे पास भेज देना। अतः यह पांच स्त्रियां उनके वीर पुत्र के आज्ञानुसार उनके पिता की क़ब्र में दफ़न करदी जायँगी"। यह सुन कर पादरी साहब ने उन्हें बहुत कुछ धिक्कारा, परन्तु उनको वहां कौन सुनता था? वे लोग हँसते रहे और रस्सा खींचते रहे।

तब पादरी साहब सरदार के लड़के के पास उसके घरके भीतर गये और उसे अपना व्याख्यान सुनाने लगे। लड़का भी अपने बाप ही के समान पराक्रमी और बलिष्ठ था। फिर बाप के मरने का उसे दुःख था। उसे क्रोध आगया और गदा उठा कर वेग से वह इनपर झपटा। आप भागे। उसने पीछा किया। पादरी साहब नाव पर कूद पड़े। और नाव फौरन खोलदी गई। इससे आप बच गये।

इस घटना के सात वर्ष बाद उसे पादरी साहब ने किरानी बनाया।

कृपाशङ्कर निगम।

पुस्तक-परीक्षा।

हिन्दी व्याकरण*। हिन्दी में एक अच्छे व्याकरण का बड़ा अभाव है। नहीं मालूम कब इस अभाव की पूर्ति होगी। व्याकरण हैं कई; परन्तु सब में कोई न कोई त्रुटि अवश्य है। बड़े आनन्द की बात है कि जिस व्याकरण के विषय में हम यह लेख लिख रहे हैं उसमें औरों की अपेक्षा विशेषता है। उसमें कितनी ही बातें ऐसी हैं जो और और व्याकरणों में नहीं पाई जातीं। उसके लिखने का क्रम भी अच्छा है; और उसमें जो सूत्र या नियम हैं उनकी भाषा भी अपेक्षित अर्थ को बहुत अच्छी तरह से व्यक्त करती है। यह व्याकरण बहुत उपयोगी है; इससे हिन्दी को लाभ पहुंचने की पूरी सम्भावना है। जब तक कोई व्याकरण इससे अच्छा न निकले, तब तक हिन्दी जाननेवालों को इसका संग्रह और अवलोकन अवश्य करना चाहिये।

इस व्याकरण में छोटे साँचे के १९२ पृष्ठ हैं। इसकी छपाई भी अच्छी है और इसका काग़ज़ भी अच्छा है। मूल्य इसका ॥) है। इसका एक संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित हुआ है। वह नीचे दरजे के विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है। दोनों संस्करण बिहारबन्धु प्रेस, बांकीपुर, में छपे हैं।

इसके कर्ता पण्डित केशवराम भट्ट हैं। आप बिहार के एक स्कूल में प्रधान पण्डित हैं; वहां की टेक्स्ट् बुक कमेटी के सभासद् भी हैं। आप बिहारबन्धु के सम्पादक भी रह चुके हैं और कई पुस्तकें भी आपने लिखी हैं। व्याकरण का लिखना ऐसेही अनुभवशील लेखक और शिक्षक का काम है। आपने बहुत अच्छा किया जो यह व्याकरण लिखा। एतदर्थ हम आपको धन्यवाद देते हैं। इसके लिखने में आपने बहुत परिश्रम किया है।

* यह लेख हमने २६ एप्रिल, १९०४, को समाप्त किया था। पर जगह की कमी के कारण अब तक यह पड़ा रहा। खेद है, इस दरमियान में, हिन्दी व्याकरण के कर्त्ता पण्डित केशवराम भट्ट का शरीरपात हो गया। सं० स०।

इसके लिए सामग्री इकट्ठा करने में भी आपको बहुत श्रम हुआ है। अतएव आप सर्वथा प्रशंसा के पात्र हैं।

यह व्याकरण पहले विहारबन्धु "में क्रमशः प्रकाशित किया गया था। यह इस लिए किया गया था कि समालोचकों को इसकी समालोचना का अवसर मिले; और यदि इसमें कोई त्रुटियां हों तो वे दूर कर दी जायँ। जो जो समालोचनाएं हुईं उनका यथोचित विचार करके पण्डित केशवराम जी ने इस व्याकरण में यथेष्ट परिवर्तन कर दिया है। यह बात आपने भूमिका में लिखी है; और फिर भी समालोचना करने के लिए समालोचकों से प्रार्थना की है। हमारे पास आपका एक छपा हुआ पत्र आया है; उसमें भी यही बात है। इससे सूचित होता है कि भट्ट जी सच्ची समालोचना की योग्यता समझते हैं और उससे लाभ उठाने के लिए भी वे प्रस्तुत हैं। यह बात बहुत प्रशंसनीय है।

व्याकरण सम्बन्धी नियमों में हम पण्डित केशवराम जी से अनेक स्थलों में सहमत नहीं हैं। परन्तु उन सब स्थलों का उल्लेख करने और अपने मत की पुष्टि में प्रमाण देने के लिए हमारे पास स्थल भी नहीं है और हमको अवकाश भी नहीं है। इस बात का हम को खेद है। परन्तु हम पण्डित जी की हिन्दी भूमिका की भाषा के सम्बन्ध में दो चार बातें कहना चाहते हैं। हमारा मत है कि वैयाकरण को भाषा निर्दोष और सर्वसम्मत होना चाहिए। फिर व्याकरण की भूमिका की भाषा का दोषरहित होना तो और भी अधिक आवश्यक है। ऐसा न होने से व्याकरण पर लोगों की श्रद्धा के कम हो जाने का डर रहता है। इसलिए, आशा है, पण्डित केशवराम जी हमारे चापल्य को क्षमा करेंगे। हम जो कुछ लिखना चाहते हैं, शुद्ध भाव से लिखना चाहते हैं। और, यदि, हमको यह न विदित हो जाता कि आप समालोचना से बिगड़नेवाले और विचारणीय बातों को भी सर्वथा शुद्ध सिद्ध करने का यत्न करने वाले नहीं हैं तो हम इस विषय में कुछ कहते भी नहीं।

हिन्दी व्याकरण की भूमिका के आरम्भ में यह लिखा गया है—

"पेचीले पेचीले मिश्रित और संयुक्त वाक्यों के गठने में भूल का हो जाना बहुत सम्भव है।"

इसमें मिश्रित और संयुक्त शब्द अंगरेज़ी Complex और Compound शब्दों के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु अंगरेज़ी के इन दो शब्दों के अर्थ में अन्तर है; उस अन्तर को ध्यान में रख कर ही उनका प्रयोग व्याकरण में होता है। यह बात मिश्रित और संयुक्त शब्दों में नहीं पाई जाती। वे दोनों शब्द समानार्थक हैं। अतएव मिश्रित की जगह कोई दूसरा शब्द लिखना उचित था।

"दिल्ली से जों जों पश्चिम या पूरब बढ़ते जाइये तों तों इसका भेद घटता जाता है।" पृष्ठ २, पंक्ति २-३

जहां तक हम जानते हैं दिल्ली आगरे की तरफ़, बोल चाल की भाषा में, जों जों और तों तों नहीं बोला जाता। उनकी जगह ज्यों ज्यों और त्यों त्यों बोला जाता है। आपका नियम १४ (पृष्ठ ५१) हमने देख लिया है।

"इस भाषा का साधारण नाम तो हिन्दी है, पर हिन्दुस्तानी भी कहते हैं।" पृष्ठ २, पंक्ति १०-११

यह वाक्य यदि इस तरह लिखा जाता तो और भी अच्छा होता—

इस भाषा का साधारण नाम तो हिन्दी है; पर "इसे कोई कोई" हिन्दुस्तानी भी कहते हैं।

ऊपर जो शब्द उलटे विराम चिन्हों के बीच में रक्खे गये हैं उनके बिना यह वाक्य पूरा नहीं होता।

"और ये हिन्दी बोलनेवाले भारतवासी हिन्दुस्तान से बड़े उस लम्बे चौड़े खण्ड के रहनेवाले हैं जिसके पच्छिम सिन्धु नदी, उत्तर हिमालय के पहाड़ी प्रदेश, पूरब बंगाला और दक्खिन नर्मदा नदी है।" पृष्ठ २, पंक्ति १३-१६

दक्खिन में नर्मदा नदी की सीमा लिखना ठीक नहीं। उसके दक्षिण भी हुशंगाबाद, खांडवा, नरसिंहपुर और बेतूल इत्यादि कई ज़िले मध्य-प्रदेश में ऐसे हैं जहां की भाषा हिन्दी है, मराठी नहीं।

"साधु भाषा जो कचहरी दरबार सभा आदि साधारण अवसर पर लिखी पढ़ी और बोली जाती है।" पृष्ठ २-३, पंक्ति २०, १-२

सभा इत्यादि के लिए अवसर शब्द का प्रयोग ठीक नहीं जान पड़ता। "साधारण अवसर पर" की जगह "में" लिखना अधिक उपयुक्त होगा; या, अवसर को किसी दूसरे शब्द से बदल देना अच्छा होगा।

"एक बात भी प्रायः सभी देशों में देखते हैं।" पृष्ठ ३, पंक्ति ४

यहां देखते हैं के पहले कर्त्ता 'हम' की अपेक्षा है। ऐसे स्थलों पर लोग कर्त्ता को बहुधा छोड़ भी देते हैं। परन्तु, यहां पर, हमारी समझ में, उसका होना आवश्यक है।

"यहां देशी राजाओं के राज में दिल्ली ही सदा राजधानी रही।" पृष्ठ ३, पंक्ति ८-९

फिर थोड़ी दूर पर है—

"दिल्ली वाले........ क्रियाओं के रूप......का बर्ताव जैसा करते हैं।"

पहले अवतरण में "राजा" शब्द पुल्लिङ्ग है और दूसरे में क्रिया शब्द स्त्रीलिङ्ग। फिर, इन भिन्न लिङ्ग वाले शब्दों की षष्ठी विभक्ति में 'राजाओं' और 'क्रियाओं' रूप किस नियम से हुए? आपके नियम ५७ (पृष्ठ ७८) और ८८ (पृष्ठ १०३) से इसका समाधान नहीं होता।

"उसका अनुसरण सब किसीको करना चाहिये।" पृष्ठ ३, पंक्ति १५-१६

आप 'चाहिये' की जगह 'चाहिए' क्यों नहीं लिखते? सब कहीं आपने 'चाहिये' ही लिखा है।

आपके नियम १५ (पृष्ठ ४७) के अनुसार 'इये' प्रत्यय की जगह 'इए' क्यों न हो? स्वर प्रधान हैं, व्यञ्जन अप्रधान। जहां तक स्वरों से काम निकले तहां तक व्यञ्जनों के प्रयोग की क्या आवश्यकता? अकेले 'ए' का जैसा उच्चारण होता है वैसा ही य् + ए = ये का होता है। फिर यह द्राविड़ी प्राणायाम क्यों? यदि कोई यह कहे कि 'इये' प्रत्यय का रूप 'इए' करने से सन्धि हो जायगी, तो ठीक नहीं। हिन्दी में इस प्रकार की सन्धि को नित्य मानने से बड़ा गड़बड़ होगा। 'आईन' इत्यादि शब्द फिर लिखे ही न जा सकेंगे। हां 'आयीन' चाहे कोई भले ही लिखे।

"परन्तु जब कोई किसी विषय को लिखने बैठता है तो उसके सामने बहुत से ऐसे ऐसे भाव भी आ खड़े होते हैं।" पृष्ठ ४, पंक्ति ४-६

इस वाक्य में 'तो' की जगह 'तब' होता तो ठीक होता। 'जब' के साथ 'तब' का ही प्रयोग उचित जान पड़ता है।

"इसी भेद के कारण इसी हिन्दी का एक नाम और उर्दू भी हो गया है।" पृष्ठ ४, पंक्ति ८-१०

यहां पर 'और' शब्द यदि 'नाम' के पहले लिखा जाता तो वाक्य का शैथिल्य जाता रहता। शब्दों को यथास्थान रखने ही से वाक्य में शोभा आती है। ठीक अर्थ भी तभी निकलता है।

"हिन्दी उर्दू को अलग अलग दो भाषा समझना बड़ी भूल है।" पृष्ठ ४, पंक्ति १२-१३

इस वाक्य में 'भाषा' शब्द का बहु वचन क्यों न हो? 'दो' के साथ तो 'भाषायें' लिखना ही उचित जान पड़ता है।

"फिर मा का अक्षय भण्डार रहते इसे किसी दूसरे की ऋणी होने देना अच्छा नहीं।" पृष्ठ ४, पंक्ति १५-१७

'अक्षय' यहां पर 'भण्डार' का विशेषण है। अतएव वह 'अक्षय्य' क्यों न हो?

"विद्यमान विषयों में दिल्ली के कवियों की उक्तियां लिखी गई हैं।" पृष्ठ ४, पंक्ति १८-१९

"मतमतान्तरों के मुठभेड़ से नई नई रीतें प्रचार होती जाती हैं।" पृष्ठ ८, पंक्ति १९-२०

'उक्ति' और 'रीति' दोनों इकारान्त संस्कृत शब्द हैं। फिर पहले का बहुवचन 'उक्तियां' और दूसरे का 'रीतें' क्यों होना चाहिए? 'रीतें' की जगह 'रीतियां' क्यों नहीं? आपका नियम २३ (ख) (पृष्ठ २८) हमने पढ़ लिया है। आप रीति, नीति इत्यादि शब्दों को रीत, नीत या रीती, नीती क्यों लिखना चाहते हैं? ऐसा करने से उक्ति को कोई 'उक्त' भी लिख सकेगा; परन्तु 'उक्त' और 'उक्ति' के भेद को तो आप अच्छी तरह जानते हो होंगे। आपने जो नियम किया कि—"ह्रस्व स्वरान्त शब्द शुद्ध संस्कृत के होते हैं। हिन्दी में आने पर भी (वे) ह्रस्व स्वरान्त ही लिखे जाते हैं" वह ठीक जान पड़ता है।

ऊपर जो दूसरा अवतरण दिया गया उसमें 'रीतें प्रचार होती जाती हैं' की जगह यदि 'रीतियां प्रचरित (प्रचलित) होती जाती हैं' या 'रीतियों का प्रचार होता जाता है' होता तो वाक्य में अधिक शुद्धता आ जाती।

"दिल्ली का हिन्दू भला गद्य लेखक ही प्रसिद्ध और प्रमाणिक जो कोई होता तो उसीके लेख से दृष्टान्त उद्धृत किये होते।" पृष्ठ ५, पंक्ति ४-६

यह वाक्य बहुत ही अस्तव्यस्त जान पड़ता है। यदि इसे हम लिखते तो

'दिल्ली के हिन्दुओं में से यदि कोई गद्य लेखक ही प्रसिद्ध और प्रामाणिक होता तो हम उसी के लेख से दृष्टान्त उद्धृत करते'

इस प्रकार लिखते।

"अतएव क्षमा के पात्र हैं।" पृष्ठ ५, पंक्ति ६-७

क्षमा के पात्र हैं, कौन? यहां पर "हम" रह गया है।

"हिन्दी-भाषा बहुत सी लिपियों में लिखी जाती है। महाजन और व्यापारी महाजनी लिपि में और कायस्थ कैथी में लिखते हैं।" पृष्ठ ५, पंक्ति ८-१०

यहां पर 'महाजनी' शब्द के पहले एक 'उसे' या 'उसको' दरकार है।

"अतएव ये शास्त्री और वैज्ञानिक विषयों के गूढ़ और गम्भीर भावों का.........बोझ नहीं संभाल सकतीं"। पृष्ठ ५, पंक्ति १२-१६

यहां पर 'शास्त्री' की जगह 'शास्त्रीय' क्यों नहीं? यदि 'शास्त्री' ही लिखना था तो 'वैज्ञानिक' की जगह 'विज्ञानी' क्यों नहीं? नियम ७, पृष्ठ ५०, में जो आपने सम्बन्धी अर्थ में 'इय' प्रत्यय को लिखकर 'समुद्रिय', 'क्षत्रिय' और 'इन्द्रिय' शब्दों को उदाहरण-वत् दिया है उन शब्दों पर फिर विचार कर लीजिए। वहीं पर दसवें नियम में आपने 'ईय' प्रत्यय को गुण-अर्थ में लगाया है, और 'स्वर्गीय', 'भारतवर्षीय' और 'युरोपीय' शब्दों का उदाहरण दिया है। हमारी समझ में यह प्रत्यय गुण-अर्थ में नहीं, किन्तु सम्बन्ध अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'स्वर्गीय' का अर्थ है स्वर्ग का, 'भारतवर्षीय' का 'भारतवर्ष का' और 'योरोपीय' का 'योरप का'। यही 'ईय' प्रत्यय लगाने से 'शास्त्र' से शास्त्रीय होता है; और 'शास्त्री' की जगह उसका ही होना उचित था। तद्धित प्रत्यय 'इय' की हम कोई आवश्यकता नहीं देखते। 'क्षत्रिय' और 'इन्द्रिय' शब्दों में उसकी तादृश अपेक्षा नहीं है।

"उसे......... बिलग्रामी ने ... तमद्दुन-इ-अब नाम प्रसिद्ध पुस्तक की भूमिका में ...... दिखला दिया है।" पृष्ठ ५-६, पंक्ति २०, १-३

यहां पर 'नाम' की जगह 'नामक', या 'नामी' या 'नामवाली' लिखना अधिक उचित था।

"इसी लिये इस व्याकरण में इनहीं से काम लिया है।" पृष्ठ ६, पंक्ति ७-८

इस वाक्य में 'इसी लिये' क्यों? 'इसी लिए' क्यों नहीं? जब स्वर से काम न चले तब व्यञ्जन

का प्रयोग कीजिए। यहां पर 'लिये', 'लिया' का बहुवचन नहीं है; किन्तु 'इसी लिये' अव्यय का उत्तराङ्ग है; अतएव हम 'इसी लिये' की जगह 'इसी लिए' लिखना ठीक समझते हैं। यदि 'लिया' का बहुवचन 'लिये' लिखा जाय तो वह ठीक कहा जा सकता है। आपने तो इस नियम को भी भङ्ग किया है। 'नया' शब्द कभी 'नया' नहीं लिखा जाता; परन्तु 'नया' का स्त्रीलिङ्ग आपने नई लिखा है; 'नयी' नहीं। और 'नई' लिखना कुछ अनुचित भी नहीं। यदि स्वर से काम निकल जाय तो व्यञ्जन के प्रयोग की तादृश आवश्यकता नहीं।

पूर्वोक्त अवतरण में 'इनहीसे' की जगह 'इन्हीसे' होना चाहिए। दिल्ली आगरे के लेखक 'इनही से' का महाविरा नहीं काम में लाते।

ऊपर के अवतरण में एक और त्रुटि है। 'काम लिया है' के पहले या तो 'हमने' होना चाहिए, या 'काम लिया है' की जगह 'काम लिया गया है' लिखना चाहिए।

"पाणिनि के सदृश परिभाषाओं से भी बचने का बहुत उद्योग किया है।" पृष्ठ ७, पंक्ति ४-५

'उद्योग किया है'—किसने ? 'हमने' रह गया जान पड़ता है।

"और अब भी हाथ जोड़ के सब से प्रार्थना करते हैं कि जिन महाशय को जहां जहां जो कुछ त्रुटि देख पड़े, कृपा करके हमें जता दें।"

इस वाक्य में 'प्रार्थना करते हैं' का कर्ता छूट गया है। वाक्य के उत्तर भाग में एक सर्वनाम भी अपेक्षित है।

"संस्कृत व्याकरणों में महर्षि पाणिनि कृत अष्टाध्यायी सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।" पृष्ठ ७, पंक्ति १६,१७

"इतने पर भी पाणिनि के अष्टाध्यायी में बहुतेरी बातें ऐसी रह ही गई।" पृष्ठ ८, पंक्ति ३-४

इन वाक्यों में 'अष्टाध्यायी' पुल्लिङ्ग क्यों ? किस नियम से ?

"उस समय में भी जब एक ही बार के उद्योग में ...... व्याकरण न बन सका तो ...... ऐसी अवनत अवस्था में कब संभव है।" पृष्ठ ७, पंक्ति ८-११

'तो' की जगह 'तब' क्यों नहीं ? 'जब' के साथ तो 'तब' ही आना चाहिए।

"पाणिनिय व्याकरण भी कभी ऐसा पत्थर की लकीर न होता।" पृष्ठ ९, पंक्ति ७-८

'पाणिनिय' की जगह 'पाणिनीय' क्यों नहीं ? जिस नियम से यह शब्द बनाया गया है उसका विचार ऊपर किया जा चुका है। 'पाणिनिय' की तरह के और भी दो एक प्रयोग इस भूमिका में हैं।

आशा है पण्डित केशवराम जी इन सूचनाओं का विचार करेंगे। इनमें यदि कोई सूचना उनको उपादेय समझ पड़े तो उसके अनुसार, व्याकरण के दूसरे संस्करण में, वे परिवर्तन कर दें; अन्यथा उसे त्याज्य समझें। व्याकरण-सम्बन्धी छोटी मोटी त्रुटियां यदि औरों के लेख में देख पड़ें तो वे किसी प्रकार क्षम्य भी मानी जा सकती हैं; परन्तु वैयाकरणों के लेख में, और विशेषतः व्याकरण की भूमिका में, उनका न होना ही अच्छा होता है।



महाराजाधिराज पृथ्वीवीरविक्रम जङ्गबहादुरशाह नेपालाधिपति ।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] अगस्त, १९०५ [संख्या ८

विविध विषय।

जान पड़ता है कभी वह दिन भी आवैगा जब बड़े बड़े दफ़्तरों से बाबू लोग बिलकुल ही निकाल बाहर किये जांयगे। जहां '५० हैं वहां शायद ५ रह जांयगे। तो काम कौन करेगा? काम करैंगी कलैं। ज़िन्दा आदमियों की जगह मुर्दा ईस्पात को मिलैगी! पर ईस्पात को मुर्दा क्यों कहना चाहिए? अध्यापक वसु ने उसे भी ज़िन्दा सिद्ध कर दिखाया है। दफ़्तरों में काम देनेवाली और कलों के सिवा अब एक मीमिओग्राफ़ नाम की कल निकली है। वह सरकुलरों और चिट्ठियों की हज़ारों कापियां थोड़े ही समय में छाप डालती है; उनको लपेट कर लिफ़ाफ़ों के भीतर रख देती है; लिफ़ाफ़ों पर पता लिख देती है; और फिर उन पर मोहर भी कर देती है। अमेरिकावालों ने एक और विलक्षण कल निकाली है। बड़े बड़े अकाउण्टेण्ट उसके सामने कोई चीज़ नहीं। रेल और जहाज इत्यादि के किराये के हिसाब की वह जांच करती है; बड़ी बड़ी दूकानों के ख़रीद फ़रोख़्त का हिसाब देखती है; जिस मद की जो रक़म होती है उसे उसी मद में जोड़ती है; हाथों लम्बी रक़मों को जोड़ने का काम बात कहते कर डालती है। फिर जो कुछ वह करती है सही करती है। परीक्षा से मालूम हुआ है कि एक कल कम से कम पांच आदमियों का काम करती है।

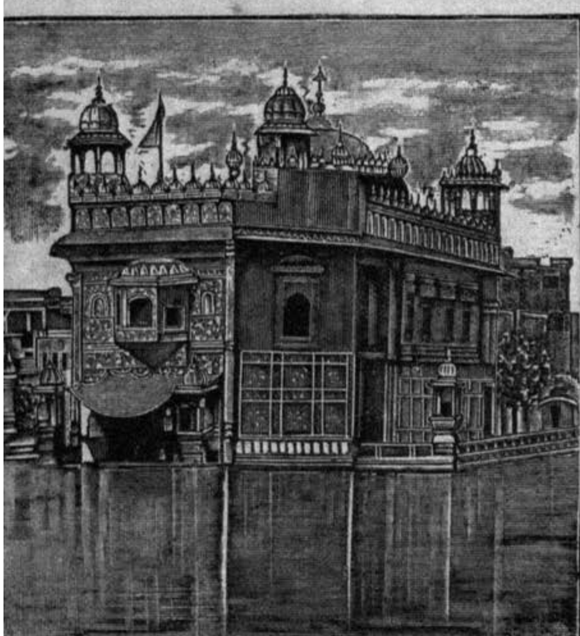
***

पाठकों ने फ़ोनोग्राफ़ नामक गाने और बात करने वाली कल का नाम सुना होगा। उसके आविष्कर्त्ता अमेरिका के एडिसन साहब हैं। आविष्क्रिया शक्ति में आप आपही हैं। अब एक वैज्ञानिक ने आपके फ़ोनोग्राफ़ को टेलीफ़ोन में जोड़ दिया है। जब वह अपने दफ़्तर से बाहर जाता है तब फ़ोनोग्राफ़ को टेलिफ़ोन में जोड़ जाता है। यदि उसकी गैरहाज़िरी में कोई कुछ टेलिफ़ोन से कहता है तो फ़ोनोग्राफ़ जवाब देता है और जो ख़बर होती है उसे वह रख लेता है। साहब के लौट आने पर कभी इस तरह की दो दो चार

चार ख़बरें उन्हें मिलती हैं। साहब की गैरहाज़री में यदि कोई उन्हें पुकारता है तो फ़ोनोग्राफ़ कहता है—"साहब बाहर गये हैं। मैं फ़ोनोग्राफ़ हूं। आपको जो कुछ कहना हो कहिए। साहब के लौट आने पर आपकी ख़बर मैं उन्हें सुना दूंगा"।

* * *

अमृतसर में एक तालाब है। उसीमें सिक्खों का प्रसिद्ध मन्दिर है। उसे दरबार साहब कहते हैं। उसका दूसरा नाम हरिमन्दिर भी है। अब तक वहां हिन्दुओं के जाने को मनाई न थी। पर कुछ दिन से सिक्खों ने वहां उनका जाना बन्द कर दिया है। तालाब के एक किनारे हरि को पैड़ो



नामक कुछ सीढ़ियां हैं। वहां हिन्दू लोग बैठ कर स्नान-पूजन करते थे। पर सिक्ख अब उन्हें वहां नहीं जाने देते। हिन्दुओं की मूर्तियां भी, सुनते हैं, उन्होंने वहां से उठवा दी हैं। सिक्ख लोग हिन्दुओं ही के अन्तर्भूत समझे जाते हैं। पर वे अपने को अब अलग करना चाहते हैं। धर्म्मान्धता ने इस देश का अत्यधिक नाश किया है। पर इतने से भी लोगों की आंखें नहीं खुलीं। अभी उन्हें और कुछ अधिक देखने की लालसा है।

* * *

अमेरिका में एक पौधा होता है जो चूहों को पकड़ लेता है और उन्हें खा जाता है। पेन्सलवानियां के विश्वविद्यालय के बाग़ में ऐसे बहुत से पौधे लगाये गये हैं। उनको देख कर लोगों को आश्चर्य होता है। इन पौधों की पत्तियों के छोर छोटे लोटे के आकार के होते हैं, उनका मुँह कम चौड़ा होता है, उनमें लम्बे लम्बे दो कांटे होते हैं। इस लोटे के अकार की चीज़ में एक प्रकार का रस भरा रहता है। वह दूर से झलकता है। देखने में वह हानिकारक नहीं जान पड़ता। पर उसमें बेहोशी पैदा करने का गुण है। जंगली चूहे इत्यादि जीव प्यासे होने पर उस रस को पीने दौड़ते हैं। उसे पीतेही वे बेहोश हो जाते हैं और वहीं रह जाते हैं। इतने में वे दोनों कांटेदार चीज़ें उनको मज़बूती से पकड़ लेती हैं और पत्ती का मुँह बन्द हो जाता है। इस तरह वह जीव क़ैद होकर वहीं मर जाता है और धीरे धीरे वह पौधा उसे हज़म कर जाता है। जंगल में यह पौधा बहुत अधिक खाता है। पर इसके जितने भाई बन्द पेन्सलवानिया के बाग़ में क़ैद हैं, उनकी ख़ूराक कम होगई है। उनको अग्निमान्द्य सा हो रहा है। बाग़बान को चाहिये कि हिन्दुस्तान के किसी विज्ञापनबाज़ वैद्य से थोड़ा सा "बड़वानल चूर्ण" मंगाले। उसके सेवन से वह पौधा चूहे नहीं, हाथी हज़म कर जायगा।

* * *

न्यूजर्सी प्रान्त में ट्रेण्टन नामक एक गांव है। उसमें ए० ई० हर्पिन नामक एक आदमी रहता है। वह सोता ही नहीं। दस वर्ष से उसे एक घड़ी भर के लिए भी नींद नहीं आई। वह बिस्तरे पर लेटा रहता है और मामूली आदमियों की तरह आराम करता है। पर उसे नींद नहीं आती। उसको इस दशा को देख कर डाक्टर लोगों को

आश्चर्य होता है। नींद न आने के कारण उसे कोई तकलीफ़ नहीं होती। वह ख़ूब मोटा ताज़ा और नीरोग है। ईश्वर की लीला!

_

प्रसिद्ध मूर्तिकार गणपति काशिनाथ म्हातरे का जीवनचरित सरस्वती के पाठकों ने पढ़ा ही होगा। इस समय आप एक आश्चर्यजनक यंत्र तैयार करने के उद्योग में हैं। वे चाहते हैं कि मिट्टी की एक मूर्ती बना कर उसका लगाव एक विलक्षण यंत्र से करदें। फिर उस यंत्र का संयोग एक पत्थर के टुकड़े से करदें। इसके बाद वे उस यंत्र को घुमा दें और वह दो तीन घंटे में उस पत्थर के टुकड़े की एक मनोहर मूर्ति मिट्टी के पुतले के नमूने को बना दे। ईश्वर इस उद्योग में म्हातरे महाशय को सफलता दे!

_

फ़िनलेण्ड में हेलसिंगफोर्स नामक एक गांव है। वहां रोज़ा वेडस्टड नाम की एक बे-ब्याही स्त्री



रहती है। इसकी उमर २४ वर्ष की है। वह सात फ़ुट दो इंच लम्बी है और अभी बढ़ती ही जाती है। इस स्त्री के माता, पिता और भाई बहिनें सब मामूली क़द के हैं। छठे वर्ष तक सामान्य उँचाई से अधिक होनेके इसमें भी कोई लक्षण नहीं पाये जाते थे। परन्तु सातवां वर्ष लगते ही इसने बढ़ने में दिन दूनी रात चौगुनी तरक़्क़ी की। यहां तक कि चौदहवें वर्ष में यह पांच फ़ुट सात इंच की आश्चर्यजनक उँचाई को जा पहुंची। तब से इसका आकाश की ओर चढ़ना कुछ कम हो गया है, क्योंकि दस वर्ष में यह एक फ़ुट सात ही इंच और बढ़ पाई है। वृद्धि की विशेषता केवल इसके नीचे के भाग में है। इसकी टांगें असाधारण लम्बी हैं। भुजा और बाक़ी का शरीर टांगों के मुक़ाबले में कुछ ही विस्तीर्ण है। ज़रा इसकी तसवीर देखिए। इसके दोनों तरफ़ कई स्त्री और पुरुष खड़े हैं। पर वे सब इसके भुजाओं की छाया के नीचे हैं। वे इसकी छाती तक भी नहीं पहुंचे। यह स्त्री नहीं, दानवी है। हम सोचते हैं, भला इसका विवाह किस पुरुष के साथ होगा? यह अभी कुमारी है।

महाकवि माघ।

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः॥

—कस्यचित् कवेः।

भारतवर्ष में प्रसिद्ध उच्चश्रेणी के महाकाव्यों में "शिशुपालवध" नामक अनुपम काव्य के कर्त्ता माघ कवि को कौन नहीं जानता है? संस्कृत के विद्वानमात्र तो माघ से परिचित ही हैं; उनके सिवा जो महाशय संस्कृत से अनभिज्ञ होकर भी साहित्यरसिक हैं, उनके कर्णगोचर भी उक्त कवि का नाम अवश्य हुआ होगा।

पाठकवृन्द, आपने बहुत से महाकवियों के इतिहास दृग्गोचर किये होंगे। अवश्यही वे सब आपके मनोहारक हो हृदयस्थल में आदरणीय हुए होंगे। परन्तु हमारे इस चरितनायक के चरित्र

में जो एक विलक्षण ग्रैार अलभ्य गुण विद्यमान था, वह एकबारगी अभिनव ग्रैार अतुलनीय घटना है। वह इनकी कीर्तिलता का मनोमुग्धकारक ग्रैार अलैकिक कुसुम-पराग-रूप है। उसके आगे अमरेन्द्र के नन्दन कानन की स्वर्गीय मन्दार-सुगन्ध तुच्छ है। आहा! ऐसे उदारचरित का चरित्र लिखने में हृदय क्या ही उत्साहित होता है? उसका स्मरण मात्र हृदय को पुलकावली-पूरित कर रहा है। अवश्य ही इस स्थानपर हम इनकी अप्रतिम काव्यशक्ति का उल्लेख करके प्रबन्ध के स्थानान्तर में उल्लेखनीय विषय को यहां लिखकर—प्रक्रम भङ्ग करना नहीं चाहते हैं। किन्तु वह गुण इनको वर्णनातीत उदारता है। यह भी इनकी कविता-शक्ति के साथ कितनी परिपक्व अवस्था को पहुंची थी सो आगे के लेख से प्रकट होजायगा।

आज हम माघ जैसे अनल्प-प्रतिभाशाली उदार-चरित महाशय के विषय में कुछ लिखने के लिए उपस्थित हुए हैं। परन्तु प्राचीन काल के संस्कृत के विद्वानों की जीवनी लिखने को जब हम उद्यत होते हैं तब उस काल का यथावत् इतिहास प्राप्त न होनेसे प्रस्तुत कार्य में तादृश सफलता प्राप्त होने की निराशा से चित्त बहुत हतोत्साहित हो जाता है। किन्तु उन महापुरुषों के लोकोत्तर चरित ग्रैार परम रम्य काव्य ऐसे हृदयाकर्षक हैं कि चित्त को एकबार ही इस कार्य में हठात् प्रवृत्त कर देते हैं। फलतः जो कुछ मसाला जहां कहीं से हस्तगत होता है उसी के आधार से, जैसा कुछ हो सकता है, चरित लिखकर उसे सहृदयों की सेवा में अर्पण कर संतुष्ट होना पड़ता है।

हर्ष का विषय है कि हमारे प्रस्तुत कवि ने अपने लोकमान्य "शिशुपालवध" नामक महा-काव्य के ग्रन्थान्त के ५ श्लोकों में अपने विषय में कुछ लिखने का परिश्रम उठाया है, जिससे केवल इतना ज्ञात होता है कि श्रीवर्मल नामक राजा के सुप्रभदेव नामक प्रधान मन्त्री थे। उस (सुप्रभदेव) के दत्तक नामक पुत्रोत्पन्न हुआ ग्रैार उस दत्तक के पुत्र (माघ) का निर्माण किया हुआ यह "शिशु-पालवध" काव्य है। बस, इससे अधिक अपने ग्रन्थ में काव्यरचयिता ने निज विषयक देश कालादि की तो बातही दूर है, अपने नाम तक का भी उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि इससे इतिहास-लेखकों को वा पुरातत्व-प्रेमी जनों को निस्सन्देह बहुत पश्चात्ताप होता है, तथापि इससे उनकी कैसी विराट् निरभिमानता प्रकट होती है; क्योंकि ऐसे उग्र पाण्डित्य-युक्त, अनर्गल-प्रतिभा-सम्पन्न, लोकोत्तर-काव्य-निर्माता होकर भी अपना नाम तक लिखकर ज़रा भी यश स्थिर रखने का यत्न उन्होंने नहीं किया है। इधर आधुनिक—हम लोग—ज़रा ज़रा सी टूटी फूटी पुस्तकें लिख कर उनमें कई स्थानों पर अपना नाम अङ्कित करने पर भी तुष्ट न होकर निज चित्र देने तक की धृष्टता करते हैं। परन्तु किञ्चित् मननपूर्वक आलोचना करने से साम्प्रतकाल की इस प्रथा को भी हम दूषित नहीं कह सकते हैं, क्योंकि उस समय के साथ इस समय की तुलना करना अविचार की बात है। उस काल के ग्रंथों में रचयिता का नामोल्लेख न होने पर भी वे काव्य, सैाभाग्यवश, उन उन कवियों के नाम से प्रचलित हैं। परन्तु क्रमशः परिवर्त्तनात्मक काल-प्रभाव से पण्डितराजजगन्नाथ के समय में ही उनको यह लिखने की आवश्यकता जान पड़ी कि—

"दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यन्तीति शङ्कया।
मदीयपद्यरत्नानां मञ्जूषैषा कृता मया"॥

जब पण्डितराज के समय में ही एतादृशी शङ्का को स्थान मिलने लगा था, तब साम्प्रत तो उस समय को भी लगभग तीन शताब्दी हो चुकी हैं। इससे ग्रंथकर्त्ताओं के विषय में इस समय की प्रचलित प्रथा को हम एकबारही अनुचित नहीं कह सकते हैं।

खेद का विषय है कि हमारे प्रस्तुत कवि के पिता-पितामह के नाम मात्र के अतिरिक्त देश-कालादि निर्णय के लिये बाहरी प्रमाणों को ढूंढने

का श्रम उठाना पड़ता है। पर बाहरी प्रमाणों का भी यथावत् अवगत होना नितान्त दुर्लभ है। दुर्लभ न हो कैसे? कृतविद्य महाशय ऐसे ऐसे उत्कट विद्वानों के इतिहास के अनुसन्धान के लिये बिलकुल परिश्रम ही नहीं करते। संस्कृत और हिन्दी भाषा के हमारे विद्वानों की इतनी उपेक्षा इस विषय में सर्वथा अनुचित है। जब हम अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं के विद्वानों को अपनी अपनी भाषा के प्राचीन प्रसिद्ध कवियों की जीवनी के अनुसन्धान की ओर पूर्णतया दत्तचित देखते हैं, तब हमको अपनी दशा पर अत्यन्त खेद होता है। महाराष्ट्र एवं बँगला भाषा के विद्वज्जनों ने हमारे बहुत से संस्कृत के महाकवियों के विषय में बहुत कुछ गवेषणा की है। पर इस प्रान्तवाले प्रायः चुप हैं। सत्य तो यह है कि यदि इन्होंने इतना परिश्रम संस्कृत के प्राचीन विद्वानों के विषय में न उठाया होता तो किसका साहस था जो किसी के विषय में कुछ लिखने को उत्साहित होता। यद्यपि इन लोगों ने हमारे प्राचीन साहित्य की समालोचना लिखने में बड़ी स्वतंत्रता का उपयोग किया है, तथापि एतद्भिन्न विषयों में हम लोगों को इन महाशयों का उपकार अवश्य माननीय है।

यह सच है कि प्राचीन काल के निर्मित कुछ ग्रंथ ऐसे भी पाये जाते हैं जिन में थोड़ी सी ऐतिहासिक बातें भी अङ्गीभाव से मिलती हैं। परन्तु वे ग्रन्थ एक दूसरे से इतने भिन्न हैं जिससे निश्चित रूप से समयादि के सिद्धान्त-निरूपण में बड़ी कठिनता उपस्थित हो जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि ऐसे ग्रन्थों में प्रायः लोक-प्रचलित किम्वदन्तियों का आश्रय अधिक लिया गया है। उनका प्रधान उद्देश्य केवल लोक-प्रचलित मनोरञ्जक आख्यायिका सङ्कलित करने का था। इससे उन्होंने निश्चित सिद्धान्त निरूपण करने पर अल्प भी प्रयास नहीं किया है। यही कारण है कि एतादृश ग्रन्थों से इतिहास का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। तथापि ऐसे ग्रन्थों को निरे असत्य और निरुपयोगी समझ कर उनका निरादर करना भी उचित नहीं। क्योंकि इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, कि उनसे कुछ हानि न हो के थोड़ा लाभ अवश्य होता है। एक तो वे मनोरञ्जक होते हैं, सुतरां उनके पढ़ने से चित्त बहुत ही प्रमुदित होता है; द्वितीय, जिन बातों के विरूद्ध प्रमाण न मिलें उनका कदाचित् सत्य होना भी संभव हो सकता है।

हमारे प्रस्तुत कवि के विषय में भी ऐसी किम्वदन्तियों के आधार से देश-कालादि के सम्बन्ध में कुछ लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। पाठकों के मनोविनोदार्थ हम उनको यहां उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं। उनमें कितना सत्यासत्य है, इस पर विचार प्रकट किया जायगा। कहते हैं कि एक समय दुर्भिक्ष-पीड़ित होकर गुर्जर देश के वासी माघ पण्डित ने अपना गुर्जर देश छोड़ दिया। छोड़ कर उन्होंने धाराधीश श्री भोज राज के समीप एक पत्र दे कर अपनी पत्नी को भेजा। उस पत्र में यह श्लोक था—

"कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ह्री विचित्रो विपाकः॥

—माघ, सर्ग ११, श्लो० ६४।

इसका अनुवाद—कुमुद शोभा-हीन हैं, कमल शोभा-संयुक्त हैं; उलूक प्रसन्नता को त्याग रहे हैं, चक्रवाक प्रसन्न हो रहे हैं; सूर्य उदय हो रहा है, चन्द्रमा अस्त हो रहा है। दुर्दैव के विलासों का विपाक बड़ा ही विचित्र है।

इस प्रभात-वर्णन-मय पद्य को पढ़ कर श्री भोज-राज अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने तीन लक्ष मुद्रा माघ पत्नी को देकर कहा कि हे माता! यह मैंने केवल भोजनार्थ दिया है, प्रातःकाल माघ पण्डित को प्रणाम करने मैं स्वयं सेवा में उपस्थित हूंगा।

तदनन्तर माघपत्नी उस द्रव्य को लेकर पति के पास आने लगी, तो मार्ग में याचक-वृन्द से

अपने प्राणपति के शारदीय-चन्द्र-सदृश धवल गुणों को श्रवण करके उन याचकों को धारेन्द्र भोजदेव का दिया हुआ अशेष द्रव्य उसने दे दिया। और माघ पण्डित के पास जाकर वह कहने लगी कि "नाथ! राजा ने मेरा बहुत सत्कार किया और द्रव्य भी बहुत दिया; परन्तु मार्ग में मैंने याचकों से आपकी लोकोत्तर गुणावली श्रवण करके उस सब द्रव्य को उनको दे दिया"। यह सुन उदार-चेता माघ ने हर्षपूर्वक कहा "प्रिये! बहुत अच्छा किया, किन्तु और याचक-समूह आते हैं; उनको क्या दिया जायगा?" तत्पश्चात् माघ को केवल वस्त्रावशेष देख कर किसी याचक ने कहा—

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतप्त-
मुद्दामदावविधुराणि च काननानि।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोसि यज्जलद सैव तवोत्तमा श्रीः॥

अर्थात्—सूर्य की ऊष्मा से तप्त हुए पर्वतों को आश्वासन देकर दावानल से जर्जरित हुए जङ्गलों को हरा भरा करके, सैकड़ों नद और नदियों को जलाप्लुत करके जो तू रिक्त (ख़ाली) हो गया है, जलद, वही तेरी शोभा सब से बढ़ कर है।

तदनन्तर माघ ने अपनी प्रिया से कहा—

अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
त्यागान्न सङ्कुचति दुर्ललितं मनो मे।
याच्ञा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं नु विलम्बितेन॥

और भी—

दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः संतोषवारिणा।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति॥

इनका अनुवाद—

है पास भी धन नहीं, न मिटै दुराश।
होता न दान करते चित भी हताश॥
है याचना लघु, किये वध आत्म, पाप।
जाते न क्यों अब चले, तुम प्राण आप?
दारिद्र्य-दाव-तन-ताप हुआ घनेरा;
सन्तोष रूप जल सींच उसे निवेरा।
जाते निराश अब याचक हैं यहां से;
हा! हंत!! घोर यह ताप मिटै कहां से?

माघ ने फिर भी कहा—

न भिक्षा दुर्भिक्षे पतति दुरवस्थाः कथमृणं
लभन्ते कर्माणि द्विजपरिवृढान् कारयति कः।
अदत्त्वैव ग्रासं ग्रहपतिरसावस्तमयते
क्व यामः किं कुर्मो गृहिणि गहनो जीवनविधिः॥

अनुवाद—

न भिक्षाही पाते अहह! मिल सकता न ऋण भी;
कराता है कोई न द्विजकुल से दासपन भी।
न दे अन्न ग्रासै गृहपति हुआ अस्त चहता;
करैं क्या हे प्यारी! अब कठिन है जीवन महा॥

दानवीर माघ की ऐसी अत्यन्त शोचनीय अवस्था देख सब याचक अपने अपने स्थानों को चले गये। तब महात्मा माघ अपने मुख से यह दुःखोद्गार निकाल कर मृत्यु को प्राप्त हुआ—

व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतांगते।
पश्चादपि हि गन्तव्यं क्व स्वार्थः पुनरीदृशः॥

अनुवाद—

जाओ तुरन्त तन से तुम प्राण जाओ,
देखो निराश सब याचक जा रहे हैं।
पीछे अवश्य तुम को तन छोड़ना है,
ऐसा सुयोग तुमको न कभी मिलेगा॥

महामनस्वी माघ के परलोक-गमनान्तर माघपत्नी ने यह पद्य पढ़ा—

सेवन्तेस्म गृहं यस्य दासवद्भूभुजः पुरा।
हाय भार्यासहायोऽयं मृतो वै माघपण्डितः॥

अनुवाद—

आके अनेक घर दास बने सदैव,
सेवा नरेश करते जिसको तथैव।
हा आज छोड़ अबला निज निःसहाय,
सो माघ पण्डित गया परलोक हाय!

माघ की यह दशा सुनकर महाराज भोज ने आकर उसकी अन्त्यक्रिया सम्पादन की और पतिव्रता माघपत्नी ने अपने पति के साथ सहगमन किया।

माघ के विषय में उपर्युक्त लेख बल्लाल पण्डित ने भोजप्रबन्ध में संगृहीत किया है। इसके अतिरिक्त विक्रमीय सम्वत् १३६१ में निर्मित "प्रबन्ध-चिन्तामणि" में जैन मेरुतुङ्गाचार्य ने भी उक्त कवि के विषय में एक लेख लिखा है। उसका अभिप्राय भी प्रायः उपर्युक्त भोजप्रबन्ध के लेख से मिलता हुआ सा ही है। केवल एक दो बातें वहां अधिक लिखी हुई हैं।

एक तो यह कि भोज राज के आग्रहपूर्वक निमन्त्रण से माघ एक बार अपने श्रीमाल नगर से आकर भोजराज की राजधानी में सत्कृत हुआ था। तदनन्तर राजा भोज भी लोकोत्तर और निःसीम समृद्धिसम्पन्न माघ-कवि का अतिथि हुआ। बेहिसाब दान देने से विपद्ग्रस्त होकर माघ ने फिर भोज के पास अपनी पत्नी को भेजा।

दूसरी बात यह है कि माघ के मरणोपरान्त राजा भोज ने श्रीमालनगर में माघ के प्रचुर धनशाली ज्ञाति बान्धवों के सामने उस ज्ञाति का नाम "भिल्लमाल" कहा*।

बस, यही दो बातें इस दूसरे प्रबन्ध में अधिक हैं। इन दोनों प्रबन्धों के अतिरिक्त विक्रमीय १३३४ सम्वत में प्रभाचन्द्र-प्रणीत और प्रद्युम्नसूरि शोधित "प्रभावक-चरित" के चतुर्दश शृङ्ग में सिद्धर्षि (जिसको प्रबन्धलेखक ने माघ कवि का पितृव्य-पुत्र कहा है) का चरित वर्णन किया गया है। उसमें भी माघ गुर्जर देशीय श्रीमाल नगर का रहनेवाला और भोजदेव का समकालीन कहा गया है। उक्त प्रबन्ध में निम्नलिखित पद्य भी मिलते हैं—

इत्थमुद्वेजितसान्त (?) स्तेनासौ* निर्ममे बुधः।
अन्यदुर्बोधसंबद्धां प्रस्तावाष्टकसंभृताम् ॥ ९५

रम्यामुपमिति † भवप्रपञ्चाख्यां महाकथाम्।
सुबोधकवितां विद्वदुत्तमाङ्गविधूननीम् ॥ ९६

मृत्यु तथा चरित के अन्तमें यह पद्य है—

श्रीमत्सुप्रभदेवनिर्मलकुलालङ्कारचूडामणिः
श्रीमन्माघकवीश्वरस्य सहजः प्रेक्षापरीक्षानिधिः।
तद्वृत्तं परिचिन्त्य कुग्रहपरिष्वङ्गं कथञ्चित्कालि
प्रागल्भ्यादपि सङ्गतं त्यजत भो लोकद्वये शुद्धये ॥ १५६

इन उपर्युक्त तीनों (भोज-प्रबन्ध, प्रबन्ध-चिन्तामणि, और प्रभावक-चरित) प्रबन्धों में "शिशुपालवध-" काव्य-प्रणेता माघकवि को मालवदेशाधिपति श्री भोजदेव का समकालीन (सन् ११०० ईसवी के उत्तरार्द्ध में) स्पष्ट लिखा है।

किन्तु खेद है कि हमारे प्रस्तुत कवि के समय निर्णय करने में उक्त तीनों प्रबन्धों को हम विश्वसनीय नहीं मान सकते हैं। क्योंकि उपर्युक्त लेखों के विरुद्ध दृढ़ प्रमाण मिलते हैं जिनके द्वारा माघकवि का होना इस समय के बहुत पहिले सिद्ध होता है। उन प्रमाणों को उद्धृत करने के पहले हम उक्त तीनों ग्रंथों के लेख को अविश्वसनीय मानने के कारण प्रकट करना यहां पर प्रयोजनीय समझते हैं।

"भोजप्रबन्ध" के विषय में तो अधिक लिखना पिष्टपेषण है। उसके लेख प्रायः निर्मूल निर्णीत हो चुके हैं। क्योंकि उसमें संस्कृतके प्राचीन समय के प्रायः सारे प्रसिद्ध कवियों का श्री भोजदेव के समय में होना लिखा गया है। परन्तु बहुत से कवियों का उनके पहले और पीछे होना प्रमाणान्तर से भली भांति सिद्ध हो चुका है। अनुमान होता है, इसीप्रकार, तुङ्गाचार्य-रचित "प्रबन्ध-चिन्तामणि" भी जनश्रुतियों के आधार पर लिखा गया

* अर्थात् अनेक धनसम्पन्न आदमियों के रहते भी जिस नगर में ऐसे महाकवि की मृत्यु भूखे रहने से हुई, वह नगर सभ्य आदमियों से ख़ाली समझना चाहिए; वह सभ्यों के रहने योग्य नहीं, किन्तु भीलों के रहने योग्य है। इसी लिए उसका नाम भिल्लग्राम रक्खा गया। आजकल उसे शायद भिनमाला कहते हैं।—सम्पादक।

* सिद्धर्षिः। † "उपमितिभवप्रपञ्चकथा" की समाप्ति में ग्रंथ-निर्माण-समय ९६२ संवत्सर लिखा है।

है। यह बात स्वयं आगे स्पष्ट हो जायगी। इनके सिवा तीसरा ग्रंथ "प्रभावकचरित" तो लोक-प्रचलित किम्वदन्तियों के आधार से लिखा ही गयाहै। यह बात स्वयं ग्रन्थारम्भ में ही लिखी हुई है, यथा—

बहुश्रुतमुनीशेभ्यः प्राग्ग्रन्थेभ्यश्च कानिचित्।
उपश्रुत्येति वृत्तानि वर्णयिष्ये कियन्त्यपि॥

सुतरां उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ एकही श्रेणीके सिद्ध होते हैं। इसके सिवा ऊपर कथित "सिद्धर्षि-चरित" में जिस "उपमितिभवप्रपञ्चकथा" का उल्लेख हुआ है उसकी समाप्ति में ग्रन्थ-समाप्ति का सम्वत्सर ९६२ लिखा हुआ है। इसीके आधार पर जर्मन देशीय क्लाट साहब (Dr. F. Klatt) माघ-कवि की स्थिति खिस्तीय दशम शताब्दी के आरम्भ में स्थिर करते हैं। अवश्य ही माघकवि को ईसा के नवम शतक से इस तरफ़ का कहना सर्वथा भ्रममूलक है, क्योंकि ९०० ई० के पहले "माघ" के होने में और भी अनेक पुष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

काश्मीर देश में नवम शतक के उत्तर भाग में होनेवाले श्रीमदानन्दवर्द्धनाचार्य ने अपने "ध्वन्यालोक" ग्रन्थ में निम्न लिखित पद्य "शिशुपालवध" के उद्धृत किये हैं—

त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकेतान्-
पुंभिर्न कैश्चिदपि धन्विभिरन्वबन्धि।
तस्थौ तथापि न मृगः क्वचिदङ्गनाना-
माकर्णपूर्णनयनेषु हतेक्षणश्रीः॥*
माघ, सर्ग ५।

रम्या इति प्राप्तवतीः पताका रागं विविक्ता इति वर्धयन्तीः।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीकाः समं वधूभिर्वलभीर्युवानः॥*
माघ, सर्ग ३।

ध्वन्यालोक के कर्ता आनन्दवर्द्धनाचार्य का समय ईसवी नवम शताब्दी के अन्त में काश्मीर के महाराज अवन्तिवर्मा के राज्यकाल में प्रसिद्ध है। यह बात "राजतरङ्गिणी" से स्पष्ट ज्ञात होती है। इसके अतिरिक्त शिशुपालवध के दूसरे सर्ग में ११२ श्लोक यह है—

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥

इसमें जिस "न्यास" ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है उसका प्रणेता जिनेन्द्रबुद्धिपादाचार्य से पीछे का है।†

और जर्मन देशीय विद्वान् जैकोबी साहब तो-"We therefore cannot place Mâgha later than about the middle of the sixth century" कह कर माघ का स्थितिकाल ईसा के षष्ठशतक (६००) के मध्यभाग से पीछे होना कदापि संभव नहीं बतलाते हैं। पूर्वापर विचार से जैकोबी साहब का मत ठीक जान पड़ता है। क्योंकि "प्रभावकचरित" को छोड़ कर यह और

---

* भावार्थ—इन्द्रप्रस्थ को जाने वाले और रैवतक पर्वत पर ठहरे हुये श्रीकृष्णचन्द्र की सेना का वर्णन है, कि सेना के जनसमूह को देखकर डर से घबराये हुये, अतएव अपने रहने के स्थान से चारों तरफ़ भागते हुये, मृग का किसी भी धनुषधारी (वीर) ने पीछा न किया, तथापि अङ्गनाओं के कानों तक खैंचे हुये विशाल कटाक्ष रूप बाणों से हतनेत्र शोभावाला वह (मृग) कहीं भी न ठहर सका। इस पद्य को ध्वनिकार ने उत्प्रेक्षा की ध्वनि के उदाहरण में उद्धृत किया है।

* शिशुपालवध में द्वारका-वर्णन के प्रकरण का यह पद्य है। इसका अर्थ यह है। वहां, रमणीय है इस हेतु से ध्वजाओं को स्पर्श करनेवाली (नायिका पक्ष में—रमणीय होने से प्रसिद्धि को प्राप्त होनेवाली), एकान्त होने से विलासेच्छा बढानेवाली (नायिका पक्ष में—स्वच्छ होने से अनुराग को बढ़ानेवाली) नीचे को झुके हुए अग्रभागवाली (नायिकापक्ष में—नम्रीभूत त्रिवली वाली), महलों के ऊपर की अट्टालिकाओं को तरुण पुरुष सेवन कर रहे हैं। यहां "रम्या इति प्राप्तवतीः पताका" इत्यादिक विशेषण श्लेष से अट्टालिका और नायिका दोनों पक्ष में समान रक्खे गये हैं। यह पद्य "ध्वन्यालोक" में श्लेष की ध्वनि के उदाहरण में लिखा गया है।

† न्यास का कर्ता स्वयं जिनेन्द्रबुद्धि नामक बौद्ध पण्डित है।—सम्पादक।